# ब्रह्मयोग विद्या

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥


सम्पादक

बाबू ब्रजमोहनलाल वर्म्मा बी०ए०

# ब्रह्म-योग-विद्या ।

सम्पादक

बाबू ब्रजमोहनलाल वर्म्मा बी० ए०

हरिदास एण्ड कम्पनी

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड के नरसिंह प्रेस में

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित ।

सन् १९१८

तृतीय बार १००० ] [ मूल्य १)

# विषय-सूची ।



## ब्रह्मयोग विद्या ।



## प्रथम खण्ड ।



## द्वितीय खण्ड ।

| विषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|



## तीसरा खण्ड ।

विषय | पृष्ठाङ्क

## चौथा खण्ड।



## पाँचवाँ खण्ड।



## छठा खण्ड।



## सातवा खण्ड

# निवेदन

वेदान्त से प्रेम करने वाले सज्जनों से प्रार्थना है कि, आप लोग यदि श्रीमद्भगवद्गीता के गूढ़ तत्त्वों को बिना दिमाग़ को तकलीफ दिये समझना चाहते हैं, तो हमारा "गीता" मँगा कर पढ़िये। इसकी भाषा ऐसी सरल है कि एक थोड़ासा हिन्दी पढ़ा हुआ बालक भी ब-आसानी इसे समझ सकता है। इसीसे इसकी दो हज़ार प्रतियाँ वर्ष डेढ़ वर्षमें ही हाथों-हाथ निकल गईं। अगर आपके पास दस 'गीता' और भी मौजूद हों, तो भी इसे मँगाकर, इसकी निहायत आसान भाषा का आनन्द लूटिये। मूल्य २।) डाक-महसूल पैकिंग ।=)

# प्रस्तावना ।

योग-विद्या का विषय बड़ा गहन है। ऋद्धि-सिद्धिके झगड़ों में वह और भी कठिन होगया है। वर्त्तमान समयमें इन बातोंका विश्वास करना मानों सभ्यताके विरुद्ध है; और है भी ठीक। योग मनुष्यकी शक्तियोंके विकाश की विद्या है। मनुष्य के भीतर अनन्त शक्तियाँ वर्त्तमान हैं। कभी-कभी जब किसी एक का विकाश होता है, तब उसे लोग ऋद्धि अथवा सिद्धि के पर्दों से ढक देते हैं और कोलाहल मच जाता है कि, अमुक विद्वान्-संन्यासी करामाती हैं। सैकड़ों स्वार्थी मनुष्य उनके पीछे धन, पुत्र, अर्थ, मुकद्दमा इत्यादि-इत्यादि विषयों को लिये दौड़ते हैं। अभी तक यह विद्या ऐसे मनुष्योंके हाथ में रही है, जो संसार की उन्नति से अपने को अलग रखते रहे हैं। उनके सामने देश, जाति, वंश-कर्त्तव्य निरर्थक वाक्य हैं। इन्हें वे सांसारिक बन्धन समझते हैं। ऐसे साधु-महात्माओंके ऐसे भावों के कारण किसी

भी नवयुवक या वर्त्तमान समय के मनुष्य का ध्यान इस विद्या पर नहीं गया। यथार्थ में, ऐसी दशा में, लोगों का विश्वास होना भी कठिन है।

अब आवश्यकता है कि, योग को श्रेणीवद्ध वर्त्तमान साँचे में ढाला जाय। देश, जाति व राष्ट्रकी उन्नतिमें इससे सहायता ली जाय। योग मनुष्यके हृदय को विस्तृत करता है। उदार मनुष्यमें स्वार्थ या व्यापार-वुद्धि नहीं होती—जिस में व्यापार-वुद्धि नहीं है, वह समाज या राष्ट्र की सेवा कर सकता है। हमारी यह इच्छा है कि, जहाँसे इस विद्याका प्रकाश हमको मिल सके—हम उसको एकत्रित करें और सर्व्वसाधारण के हितार्थ प्रकाशित करावें। इस पुस्तकमें योगाश्रमके आचार्य्य गोसाईं स्वामीदयालजीकी योगशिक्षाओं से अधिकांश में सहायता ली गई है। इसका कुछ अंश स्वामी विवेकानन्दजी के राजयोग से भी लिया गया है। यदि हमारे पाठक इन साधनों को करते रहेंगे, जिन में किसी प्रकार का भय भी नहीं है, तो आगे वे इस बात को भली भाँति समझ जायेंगे कि "योग-विद्या" देशके लिये क्योंकर हितकर सिद्ध हो सकती है। जब तक आप इस के साधनों को पूरा करेंगे, तब तक "आपको योग-विद्या और उसका समाज से सम्बन्ध" इस विषय पर दूसरा ग्रन्थ भेंट किया जायगा।

| | |
|---|---|
| छिन्दवाड़ा (मध्यप्रदेश) | विनीत— बृजमोहनलाल वर्म्मा। |

नोट—इसका कुछ अंश पहले 'योगसार भाग 1' के नामसे छप चुका है और सोऽहम अलग ट्रैक्ट-रूप में छपा कर मुफ्त बँटवाया जा चुका है। इन दोनों पुस्तकोंका वर्णन करते हुए मैं छिन्दवाड़ा-निवासी मुन्शी तिलोकचन्दजी को और पं० शिवप्रसादजी तिवारी को धन्यवाद देता हूँ। मुन्शी तिलोकचन्दजी के ही विशेष व्यय से योगसार प्रकाशित होसका था और पं० शिवप्रसादजी तिवारी ने सोऽहम की कापियाँ अपने व्यय से छपाकर मुफ्त बँटवाई थीं। अतएव ये दोनों सज्जन हमारे और हमारे पाठकों की कृतज्ञता के भागी हैं। अन्त में, मैं पं० हरिदासजी वैद्यको भी धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने इसे प्रकाशित करके पुण्य-लाभ किया।

# तृतीय संस्करणकी भूमिका।

आज मैं सहर्ष अपने पाठकों के सामने ब्रह्म-योग-विद्या का तीसरा संस्करण लेकर उपस्थित होता हूँ। गत आठ मासमें ही इसका दूसरा संस्करण हाथों-हाथ बिक गया। प्रेमी पाठकोंने इसे हृदयसे अपनाया, इससे बढ़कर पुस्तककी उपयोगिता का और मैं कौनसा प्रमाण दे सकता हूँ। जिन-जिन योग-प्रेमियोंने मुझको पत्र लिखनेकी कृपा की, उन्हें भी यथाशक्ति मैंने सन्तोष पूर्वक उत्तर दिया। योगके गम्भीर विषयों पर मेरे पास जो पत्र आये, उनके लेखक महाशयोंको मैंने स्वामीदयालजी महाराजका पता बतला दिया, क्योंकि उन्होंने इस पुस्तकके सब साधन सिद्ध किये हैं।

इस पुस्तकमें जितनी उपयोगिता है—वह सब श्री स्वामीजी महाराजकी कृपा और अनुग्रहका फल है। मैं स्वयं योगी नहीं हूँ, किन्तु योग-प्रेमी अवश्य हूँ। मैं अनेक दशाओंमें अपनेको योग-भ्रष्ट कह सकता हूँ। मैंने योगके साधन किये

और अवश्य किये, बहुत कुछ चमत्कारक घटनाएँ देखीं, योगसे मेरे मनको शान्ति मिली, विचार बहुत कुछ सूक्ष्म हुए, परन्तु मैं अपने को सफल योगी नहीं कह सकता और न मैं इस बातका दावा ही करता हूँ। योग सन्तोष की कुञ्जी है, शान्तिका समुद्र है, इसीलिए मैं इस ओर से कभी भी निराशा नहीं हुआ। योगके नातेही मैं दो चार पहुँचे हुए योगियोंके दर्शन कर सका और उनकी कृपा का पात्र रहा। बुद्धिसे योगका मर्म जान लेनेसे कुछ भी काम नहीं चलता।

इस संस्करणमें एक अत्यन्त उपयोगी विषयका आरम्भ किया गया है। वह "स्वरोदयशास्त्र" है। यह अतिप्राचीन और स्वाभाविक विद्या है। इस पर योग-प्रेमियोंके अध्ययन और मननकी बड़ी आवश्यकता है। मुझे कुछ सज्जन ऐसे मिले, जो स्वरोदयशास्त्रके नियमित पालनको समयकी खराबी समझते हैं, परन्तु इसके विरुद्ध मेरा और स्वरोदय-प्रेमियोंका जो अनुभव है, वह इतनी ज़बरदस्त शक्ति रखता है कि, साधारण तर्क-वितर्कों पर केवल हँसी आती है। हाँ, मैं इतना अवश्य कहूँगा कि, इस विषय की पुस्तकें अपूर्ण हैं। ज्योतिष और स्वरोदय का जो सम्बन्ध बतलाया गया है, उस पर स्वतन्त्र ग्रन्थोंकी आवश्यकता है। यदि कोई महाशय इसके सम्बन्धमें जानते हों, तो कृपया मुझे बतलाने की कृपा करें।

दूसरे, इसमें सिद्धि और स्वार्थ का जो प्रश्न उपस्थित किया है—वह आडम्बर की उपयोगिता को कम करता है।

'स्वरोदय' शरीरके सम्बन्धमें शारीरिक साइन्स है, और अध्यात्म-विषयमें आध्यात्मिक—इसमें स्वार्थ को जगह नहीं है। तीसरे, यह बड़ा कठिन प्रश्न है कि, मनुष्य स्वतन्त्र है या भाग्यसे ही इसका निपटारा होता है। यदि भाग्यसे निपटारा होता है, तो पाप और पुण्य दोनों का मनुष्य जिम्मेवर नहीं है। स्वरोदय से तो मनुष्य एक दशा में भाग्याधीन ही है।

ये कठिनाइयां मैं इसलिए सामने उपस्थित कर रहा हूँ कि, इस विषयमें वाद-विवाद, तर्क और अन्वेषणकी बड़ी आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि, इन प्रश्नों और शङ्काओंके रहते हुए भी जो इस विद्यासे ज़रा भी परिचित है, वह इसकी उपयोगिताको भली भाँति समझता है और उसको इसमें—यदि पूर्णांशमें नहीं तो अधिकांशमें—सत्यता अवश्य प्रतीत होती है।

मुझे आशा है कि, यह पुस्तक जिन लोगों के लिए लिखी गई है, उनके लिए मार्गप्रदर्शक और सच्चे सहायकका काम देगी। प्रत्येक मनुष्यको अधिकार है कि, वह इसकी भूलें मुझको बतलावे। वे सधन्यवाद स्वीकृत होंगी और चौथे संस्करणमें निकाल दी जावेंगी।

छिन्दवाड़ा
कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा
सम्वत १९७५
(१८—११—१९)

विनीत—
व्रजमोहनलाल वर्म्मा।

# योगाश्रम।

## स्थान—हरिपुर, ज़िला हज़ारा,

### पंजाब।

हसन-अब्दाल-निवासी योगिराज गोसाईं स्वामी-दयालजी के शुभ सङ्कल्प से उपरोक्त संस्था आज से बहुत वर्ष पहले स्थापित हुई, परन्तु उसका काम, जिस तरह कि हमलोग चाहते थे, न चल सका। कुछ तो विद्यार्थियों का ही दोष था, कि वे निश्चयपूर्व्वक कभी भी साधन न कर सके और कुछ हमारी आर्थिक स्थिति का; तथापि हमने इसे अब हरिपुरमें हटाकर, फिलहाल, कार्य्यारम्भ कर दिया है। स्वामीजी की इच्छा है कि, यह एक विश्वविद्यालयकी हैसियत में खोला जाय, जहाँ विद्यार्थीगण आकर राजयोग, हठयोग, मानसिक योग इत्यादि-इत्यादि शाखाओं का साधन करें और

इसके साथ ही वेदान्त, सांख्यादिक दर्शनोंका अभ्यास करें, जहाँ धर्म के साथ वैद्यक, कला-कौशल और वर्त्तमान कालकी प्रचलित विद्याओंका भी अध्ययन कराया जावे। अर्थात् तक्षशिला और नालिन्द के प्राचीन विश्वविद्यालयोंके समान, हमारे विश्व-विद्यालयमें भी, हर एक प्रकार की शिक्षा दी जावे।

इसी उद्देश की पूर्त्ति में श्रीमान् स्वामी जी काश्मीर में भ्रमण कर रहे हैं। वहाँ की धार्म्मिक प्रजा और महाराजा साहब काश्मीर दोनों ही उनके उद्देशको श्रद्धा की नज़रसे देखते हैं। आशा है कि, समय आने पर यह विद्यालय अपने ढंगका नया और अद्भुत स्थापित हो जायगा। जब तक इस महत् कार्य्य में देर है, तब तक पाठकों से निवेदन है कि, यदि वे योग और मैस्मरेज़मादिक विषयोंको सीखना चाहें, तो डाक द्वारा सीख सकते हैं। इसके लिये केवल एक वर्ष तक १) और ॥) माहवार फीस ली जाती है। जो बिल्कुल निर्धन हैं, या साधु-संन्यासी हैं, वे मुफ़्तमें शिक्षा पा सकते हैं। उनको मैस्मरेजमके क़ीमती सामान भी मुफ़्त मिलते हैं। जिन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना है, वे स्वामी जी से स्वयं मिलें। हमें विश्वास है कि, उनके दर्शन से आपको ख़ास आनन्द आवेगा।

मैनेजर—

योगिराज गोसाईं स्वामीदयाल

अधिष्ठाता योगाश्रम।

Narsingh Press Calcutta
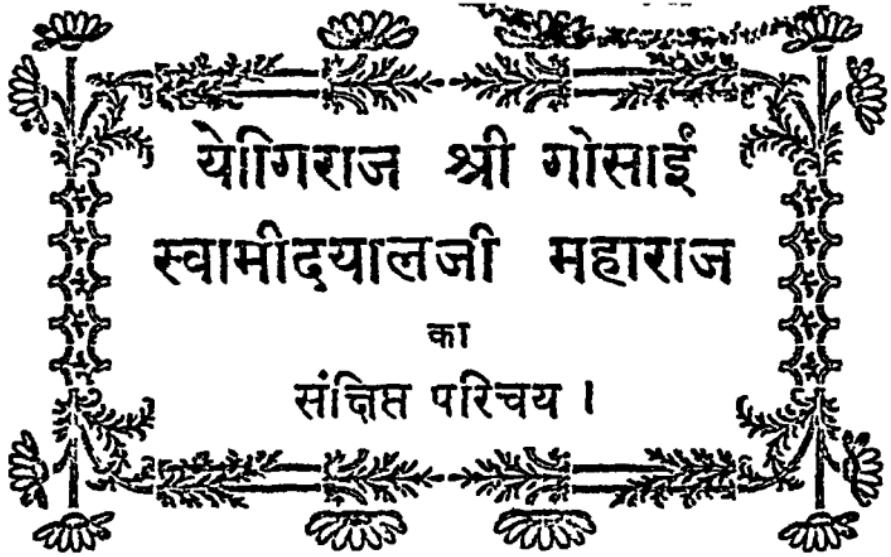
# योगिराज श्री गोसाईं स्वामीदयालजी महाराज

का

## संक्षिप्त परिचय ।

मुझे बाल्यावस्थासे ही साधु-महात्माओंके दर्शनोंकी उत्कट अभिलाषा बनी रहती थी। १२ वर्षकी अवस्थामें मैंने एक रात्रि को यह स्वप्न देखा कि, मैं रेल पर सवार हो, हसन-अब्दाल (ज़िला रावलपिण्डी) चला जारहा हूँ। स्टेशन पर पहुँचकर मैंने बड़े चौड़े प्लेटफार्म देखे। मैं एक छोटे नगर का निवासी हूँ। यहाँ पर उस समय रेल आगई थी, परन्तु मैंने बड़ी लाइनके स्टेशन नहीं देखे थे। जो मुझे मिलता उसी से मैं स्वामीदयालजीका पता पूछता। एकने मुझको उनका आश्रम और रहनेका मकान बतला दिया। मैं उनके पास गया। वे मुझसे बड़े प्रेमसे मिले। मेरे साथ बाहर घूमने चले गये।

हुए उनके पास एक ऐसे स्थानमें पहुँचे, जहाँ पर कि एक छोटासा कमरा बना हुआ था। वहाँ वे एक कुर्सी पर बैठ गये और मैं एक स्टूलपर। उन्होंने मुझे योगदर्शन का पहला सूत्र समझाया। उसके बाद मेरी आँख खुल गई।

योगिराज का यह पहला परिचय है। उनका नाम मैंने अवश्य सुना था। मेरे हृदयकी धारणा सम्भवतः ऐसी ही हो, जिससे मुझे इस प्रकारके स्वप्न आये हों, यह बहुत कुछ सम्भव है।- परन्तु जब मैं १९१२ में हसन-अब्दाल गया, तब मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मेरे लड़कपनके स्वप्नमें बहुत कुछ सत्यता थी। उसी समयसे मैं स्वामी जी का अनन्य भक्त बन गया। बहुत काल तक तो अन्धविश्वास से या असीम प्रेम के कारण उनकी मूर्त्ति मेरी आँखों में झूलती रही। मैंने सैकड़ों बार उनके दर्शन स्वप्न में किये। जिस दिन स्वामीजीका पत्र आनेवाला होता था, उसकी पहली रात्रिको मैं स्वप्नमें देखता था कि, मेरे पास पत्र आगया है। कभी-कभी जिस दिन मेरे लिए वे हसन-अब्दालसे पत्र लिखते थे, उसी दिन रात्रिको स्वप्नमें मुझे मालूम होजाता था कि, आज पत्र लिखा जारहा है। मैं परीक्षार्थ अपने कई मित्रोंसे कह दिया करता था कि, स्वामीजी का पत्र आज आवेगा या पाँचवें दिन। बहुत दिनों-तक ऐसी ही दशा रही।

जब मैं सन् १९१२ में हसन-अब्दाल गया, तो वहाँ मुझे उनके विरोधी मनुष्यों से भी मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उनमें अधिकांश सिक्ख और आर्य्य-समाजके मेम्बर थे। मुझे उनकी ज़बानी स्वामीजीके विरुद्ध बहुतसी बातें सुनने का मौक़ा मिला। परन्तु उन महाशयों के विषयमें जब मैंने पता लगाया, तो मालूम हुआ कि वे स्वयं बहुतसे ऐबोंमें फँसे हुए हैं और योगके मर्मको बिल्कुल ही नहीं समझ सकते। जब मैं लाहौर आया, तब भी बहुतसे लोगोंसे मुलाक़ात हुई। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध उर्दू पत्रोंके सम्पादकोंसे भी मैं मिला। उन्होंने भी बहुत से गुण और अवगुण स्वामीजीके बतलाये। परन्तु सबने यह स्वीकार किया कि, वह मेस्मरेज़मका ज़बर्दस्त जानने-वाला है। खैर, इसीसे मुझे तसल्ली हुई। मेरे पास उनपर विश्वास करनेको इतनी अधिक सामग्री है कि मैं शुद्ध हृदय से, न कि हठ धर्मसे, कहता हूँ कि शायद ही कोई उनका दो चार दिनका मुलाक़ाती या इधर-उधरसे उनके सम्बन्धमें कुछ सुनकर उनसे परिचित पुरुष मेरे विश्वासको डिगा सके।

स्वामीजी बाल्यकालसे ही मातृ-पितृ-विहीन हैं। इटावेके प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी ब्रह्मनाथजी महाराजसे मैंने सुना था कि जिस वंशमें ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न होता है, वह कुल या तो बिलकुल नष्ट हो जाता है या सदा हरा-भरा रहता है। यह श्रेष्ठ जीवनकी एक असाधारण दशा है। यह कथन हमारे स्वामीजीके सम्बन्धमें पूर्णतया घटित होता है। स्वामीजीने कहीं भी नियमित शिक्षा नहीं पाई, परन्तु साधा-रण हिन्दी, उर्दू और पञ्जाबी वे सीख गये। उनके एक साथीने,

जो मुझे लाहोरमें मिला था और देव-समाजका उपदेशक था और संन्यास लिये हुए था, बतलाया था कि श्री स्वामीजी लड़कपनमें मेरे साथ रहे हैं। उस समयसे १८ वर्ष की अवस्था तक उनके विचारमें योगसिद्धि और करामातकी प्रधानता थी। यह बात यथार्थ में सत्य है। यद्यपि वह संन्यासी स्वामीजीके उद्देशके प्रतिकूल था और उसे 'योग' में कोई तथ्य नहीं दिखता था, तोभी उसने अपने सरल हृदयसे यह सब स्पष्ट बतलाया।

१८ से २४ वर्ष की अवस्था तक इन्होंने योगका प्रसिद्ध साधन 'छाया पुरुष' सिद्ध किया और समाचारपत्रोंमें विज्ञापन दिया कि, मैं अपनी मृत्युका हाल ६ माससे पहले ही बतला-सकूँगा; इसी प्रकार दूसरे की मृत्यु का हाल भी मैं बतला सकता हूँ। इसी अवसर पर, इसी शुभ घड़ीमें, उन्हें स्वामी देव-राजजी समर्थमार्गीके दर्शन हुए। वे इन्हें जङ्गलमें लेगये। दो वर्ष अपने साथ रक्खा। जो कुछ योग और वेदान्तकी शिक्षा दी, उससे स्वामीदयालजीके जन्ममें एकदम परिवर्त्तन होगया। श्रीस्वामीजीने "राज-योग सोसाइटी" नामक एक संस्था कायम की। पहले-पहले उनके विचारका क्षेत्र "सिद्धियों" की तरफ़ झुका हुआ मालूम होता था। उसी समय स्वर्गीय मास्टर परोहाराय,रावलपिण्डी-निवासीके साथ मेस्म-रेज़्म, आग पर नंगे पैर चलने और लोगोंको चलाने इत्यादिके पहुतसे चमत्कार उन्होंने लोगोंको बताये। "राजयोग

सोसाइटी" का काम इतना श्रेठ था—उसके उद्देश इतने गम्भीर थे कि, यदि उसका काम चलता रहता, तो भारतवर्ष को आध्यात्मिक उन्नतिमें बहुत कुछ सहायता मिलती। १८०५ में, इस सभाके ४००० मेम्बर थे। इस सभाकी ओर से 'जामये-उलूम' नामका एक उर्दू पत्र साप्ताहिक रूपमें प्रकाशित होता था, जिसकी ग्राहक-संख्या भी ४००० से ऊपर थी। उसी बीचमें स्वामीजीने नोटिस दिया था कि, हमको ७००० साधुओंकी ज़रूरत है, जिनकी जीविका का प्रबन्ध "राजयोग सोसाइटी" करेगी। यह कितना कठिन, श्रेठ और सराहनीय कार्य्य था, पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

परन्तु यह कार्य्य एकदम रुक गया। धूर्तों और विरोधियोंकी अभिलाषा पूर्ण हुई। रावलपिण्डी-रायट—बल्वेके केस और राजयोग सोसाइटी लाटरी-केसमें स्वामीजीको १॥ वर्ष का कारावास हुआ और सोसाइटी का काम रुक गया। लाहोर-पुलिससे सभाके प्रत्येक मेम्बरके नाम एक-एक छपा हुआ पत्र गया, जिसमें सोसाइटी के सम्बन्धमें बहुत से प्रश्न थे।

कारावास से छूटने के बाद बहुतसे पुराने मेम्बर डर गये, और योग-प्रचारके काममें बड़ी-बड़ी बाधायें उपस्थित हुईं। परन्तु, अन्तमें 'योगाश्रम' नामक संस्था खोल कर स्वामीजीने पुनः अपने कार्यका प्रचार करना आरम्भ किया।

कारावास से योग-प्रचारमें बहुत कुछ हानि हुई, परन्तु

स्वामीदयालजीको अपनी उन्नति में बहुत कम बाधा पड़ी। इसके बाद हमने उनको दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करते देखा। इस घटना के पूर्व वे लोगोंको सिद्धियाँ सिखलाया करते थे, किन्तु अब उनकी वृत्ति लोगोंमें पवित्र वेदान्त और योगके प्रचारकी ओर लग गई। अब श्रीस्वामीजी महाराजकी उत्कट इच्छा है कि, एक प्रधान 'योगाश्रम' भारतवर्षके केन्द्रमें खोला जावे और उसमें नियमित रीतिसे योग और वेदान्तकी शिक्षा दी जावे। परन्तु अभी तक कोई सज्जन इस कार्यके लिए पूर्णतया तय्यार नहीं है; यद्यपि श्रीमहाराज साहब काश्मीर इस कार्यमें योग देना चाहते हैं।

स्वामीदयालजी उर्दूके सुयोग्य लेखक हैं। योग के विषय को जिस गम्भीरता और सरलता-पूर्वक वे समझाते हैं, ऐसा शायद ही अन्य कोई समझाता हो। उन्होंने 'खज़ानये-करामात' के पाँच भाग उर्दूमें लिखे हैं, जिनमें भूमिका तो अति गूढ़ विषयोंसे परिपूर्ण है, परन्तु बाकी लेख मैस्मरेज़्म आदिके हैं। छठवें भागसे उन्होंने वेदान्त पर अपनी लेखनी उठाई है और अब तक चार अति गहन पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं, जिनमें वेदान्त और योगके सिद्ध उपदेश अङ्कित हैं। अन्तिम पुस्तकका नाम 'अमरकथा' है। उनका मुख्य सिद्धान्त है कि योग पढ़नेका विषय नहीं, किन्तु करनेका विषय है। बिना योग के वेदान्तका अनुभव या आत्मसाक्षात्कार होना—अत्यन्त असम्भव और कल्पित है।

उन्हें पुस्तक-पढ़े वेदान्तियों पर दया आती है। छठी पुस्तक "समपथी" यदि अँगरेज़ीमें होती, तो इसके लेख योरुपके फ़िलासफरोंके मुक़ाबलेके समझे जाते।

मुझे दो तीन बार उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनसे मिलकर जो आनन्द मुझे प्राप्त हुआ, वह अवर्णनीय है। यद्यपि उनके पास स्वार्थसे खिंचे हुए बहुतसे मनुष्य आया करते हैं, परन्तु जो निःस्वार्थभाव से उनसे मिलेगा उसे अधिक सन्तोष होगा। स्वामीदयालजी महाराजको आप अति सरल, अति मधुर और अति गम्भीर मनुष्य पायेंगे। परन्तु बहुतसे स्वार्थरत् मनुष्य उनको साफ़ धोका दे जाते हैं। स्वामीजी महाराज 'कर्म-फल-सिद्धान्त' के बड़े पक्षपाती हैं। उनका विश्वास है कि, जो जैसा करेगा, वह वैसा पावेगा। रुपड़, ज़िला अम्बालाके आर्य-समाजने उन पर १९१३—१४ में एक दूषित मुक़द्दमा चलाया था। मैंने स्वयं हिन्दीपत्रोंमें नोटिस दिया था कि, योगाश्रमके कन्या-विद्यालय के लिए एक योग्य पाठिका की आवश्यकता है। रुपड़ आर्यसमाजकी एक अध्यापिका वहाँ जानेको राज़ी हुई। वेतन आदि निश्चित होने पर वह वहाँ चली गई। इधर आर्य्य-समाज रुपड़के कतिपय मेम्बरोंने उसके पिताको भड़काया कि, तुम पुलिसमें रिपोर्ट कर दो कि, स्वामीदयालजीने लड़कीको भगा दिया है। यद्यपि अध्यापिकासे सब ठहराव—वेतन आदिका पत्र-व्यवहार—मेरे द्वारा हुआ था, परन्तु वह रिपोर्ट होगई। स्वामीजी किसी स्थान पर प्रचार करनेके लिए गये हुए थे, परन्तु आर्य्य-समा

उनके मुख्य पत्र "प्रकाश" ने यह झूठी ख़बर छापदी कि, स्वामीदयाल्ल भाग गये हैं। यह कल्पित बात थी। पेशी पर स्वामीजी हाज़िर होगये और जब उस विधवाने अपना इज़हार देना आरम्भ किया और स्वामीजी पर कुछ लाञ्छन लगाने लगी, तभी वह भरी अदालतमें बेहोश होकर गिर पड़ी। पेशी बढ़ाई गई। दूसरी बार भी अदालतमें अपना इज़हार देते-देते वह इसी प्रकार बेहोश होगई, परन्तु आर्य्यसमाज अपनी ज़िद पर क़ायम रहा। तीसरी बार वह स्त्री बेहोश होकर मर गई। इस अत्यन्त चमत्कारक घटनाको देखनेके लिए, उनके कुछ अङ्गरेज़ शिष्य और अम्बाला छावनीके कुछ अङ्गरेज़ पुरुष और स्त्री दोनों आये थे। इसी समय मैंने यह सब हाल लाला लाजपतरायजीको लिखा। आर्य्य-समाज लाहोरका उत्तर आया कि, आप विश्वास रक्खें, आर्य्य समाजका एक व्यक्ति भी कभी न्याय के विपरीत नहीं चलेगा!!! इस घटना का सविस्तार वर्णन मुझे रूपड़ के एक महाशय सदा लिखते रहे। स्वामीजी से पूछने पर उन्होंने लिखा कि, "पापमें स्वयं मनुष्यको नष्ट करने की शक्ति रहती है। जब पाप प्रबल हो जाता है अथवा पाप या असत्य-विचार दृढ हो जाता है, तब वह शीघ्रही फल देता है और मनुष्य नष्ट हो जाता है।"

स्वामीजी निरन्तर दो वर्षों से भ्रमण कर रहे हैं। शायद एक दो दिनके लिए दो बार वे "हरिपुर" ज़िला हज़ारा आये हैं, जहांपर कि आजकल 'योगाश्रम' स्थित है। स्वामीजी कई

पत्रोंके सम्पादक रहे हैं । जामये-उलूम, कलङ्की अवतार-पत्रिका, खुदा, योगी आदि कई पत्र उन्होंने बड़ी योग्यतासे चलाये ; परन्तु इस ओर लोगोंकी रुचि कम देख, वे शान्त हो गये। आप अभी तक मैस्मरेज़म और योगके अद्भुत चमत्कार कभी-कभी प्रसन्नचित्त हो बतला देते हैं। दूसरेके मनके विचारोंको पढ़ना, तो मानो एक अति साधारण बात है।

इस समय इनकी अवस्था ४५ वर्ष की होगी। आप बहुधा मग्नावस्थामें रहते हैं। उस समय एकान्त सेवन के लिए जङ्गलोंमें रहते हैं। कभी-कभी ग्राम-ग्राममें योगका प्रचार करते हैं। बीमारोंका योग-बलसे और औषधियों से मुफ़्त इलाज करते हैं।

आपके मस्तककी बनावट जिस प्रकार पवित्र और श्रेष्ठ वेदान्तकी ओर झुकती है, उसी प्रकार आप कला-कौशलमें भी दखल रखते हैं। कलकत्ता पेटन्ट आफिससे आपको एक मैशीन पेटण्ट हुई है। स्वामीजीके गृहस्थकालके दो पुत्र हैं, जो किसी आश्रममें शिक्षा पाते हैं।

मेरा विश्वास है कि, ऐसे महात्मा बहुत ही कम प्रकट होते हैं। वेदान्त की अन्तिम दशा में योगी किसी के भी काम का नहीं रहता, उसकी सब इच्छायें नष्ट हो जाती है, संस्कार लोप हो जाते है, कुछ करना-धरना शेष नहीं रहता, योगी अपने अनन्त ज्ञानस्वरूपमे लीन रहता है। ऐसी दशामें श्रीकृष्ण जैसे योगी यदि योग-रचित शरीरको

धारण कर संसारका उपकार कर सकते हैं, तो अभाग्यवश संसारी मनुष्य न तो उनके उद्देशों को समझ सकते हैं न उनकी शिक्षा ही ग्रहण कर सकते हैं। भगवान् कृष्णके जीवन-कालमें बहुत थोड़े मनुष्य—केवल इने-गिने मनुष्य ही—उनको असाधारण पुरुष समझते थे। यही हाल समय-समय पर हुए महात्माओं का है। यही हाल श्रीस्वामी जी का भी है। श्रीस्वामीजी महाराजके पवित्र उद्देशोंके लिए कुछ स्वार्थहीन मनुष्योंकी आवश्यकता है। मैं अपने पाठकोंसे अनुरोध करता हूँ कि,आप इनसे मिलकर एक बार तो ब्रह्मशक्तिके अनन्त-समुद्रकी कुछ छटा का दिग्दर्शन करें। आपकी आत्माको शान्ति मिलेगी और आप अपने जन्म को सफल कर सकेंगे। ऐसे महापुरुष बहुत ही कम मिलते हैं।

श्री स्वामी देवराजजी समर्थ-मार्गी ।

# श्री स्वामी देवराजजी

## समर्थ-मार्गी

स्वामी देवराजजी समर्थ-मार्गी आचार्य-योगानन्दके गुरु थे। उनके शरीरान्तको केवल डेढ़ वर्ष हुआ है। भाग्यवश मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं अन्तिम बार उनसे, सन् १९१७ के मार्च महीने की २१-२२ तारीखको, रावलपिण्डी जाकर मिल सका। २४ या २५ मार्चको उनका शरीरान्त होगया।

स्वामी देवराजजी भारतवर्षके योगियों में प्रधान योगी थे। आप हठयोग और राजयोग दोनों का अभ्यास कर चुके थे। १४ वर्ष तक आप—सूर्य्योदय से सूर्यास्त तक—सूर्य्यको ओर टकटकी लगाये देखते रहे। इस बीचमें उन्होंने कुछ खाया-पीया नहीं। रात्रिको समाधिस्थ होजाते थे। इस प्रकार की अखण्ड तपस्या के कारण उन्हें रावलपिण्डी-निवासी "तपस्वी जी" कहा करते थे।

स्वामी देवराजजी के गृह,कुटुम्ब, जाति और वंश कुछ भी पता नहीं चलता। वे पञ्जाबके रहनेवाले थे पेशावरी और मिश्रित पञ्जाबी भाषा बोलते थे। उनकी दैहिक स्मृति बिलकुल नष्ट हो चुकी थी। मैं-तू के नाश होते ही—अहङ्कारके संस्कार भस्म होते ही—यह विचार उनके हृदय में नहीं आता था कि मैं कौन था, कहाँ रहता था, मेरे बाल्यावस्थाके साथी कहाँ है और वे कौन थे। स्वामी देवराज-जी साक्षात् ब्रह्ममूर्त्ति थे। परोपकार ही उनके जीवन का ध्येय था। निस्स्वार्थ परोपकार वे अपने योगरचित शरीर से निरन्तर किया करते थे। प्राय: पचास वर्ष तक वे रावल-पिण्डीमें रहे। पहले तो वे रावलपिण्डीके तपोवनमें रहते थे, पीछे राजा-बाजार में आ बसे। वहाँ दो महात्-माओं की पुरानी समाधियाँ बनी हुई थीं। एक समाधि-मन्दिर में वे रहते थे। यद्यपि राजा-बाजार उनके सामने बसा था, और पहले वह एक एकान्त स्थान था, परन्तु बादमें शोर-गुलमें भी वे शान्ति-पूर्वक रह सके। ५८ वर्ष पूर्व वे एक बार गोदावरीका तीर्थ करने आये थे। इनके जन्मके सम्बन्धमें इतना ही पता लगता है।

बौद्धधर्ममें उच्चतर प्राणियों की एक दशा है। इसे 'शुद्ध सत्त्व' कहते हैं। भगवान् बुद्ध उस दशामें बहुत समयों तक रह चुके हैं। इस दशाके बाद ही मनुष्य पूर्ण शुद्ध हो सकता है। स्वामी देवराजके सत्य "शुद्ध सत्त्व"

है ऋष्योंके समान थे। केवल परोपकार में ही वे निरन्तर अपना समय विताया करते थे। जिस दिन मैं रावलपिण्डी उनके दर्शनार्थ गया, उसी दिन वे एक सज्जन को, जो निरपराध था और किसी आफत में फँस चुका था, छुडानेका प्रयत्न कर रहे थे। उनका यह उद्देश दूर-दूर प्रसिद्ध था कि, जो कोई निरपराध हो, रोगी हो, आपत्ति में हो, मुझको सूचित करे। उसका सब दुःख दूर हो जावेगा। उस दिन मैंने देखा कि, वे सूर्यचक्र के कमल को बड़े ज़ोरों से घुमा रहे थे—प्राणशक्ति को आकर्षित कर रहे थे। कमरे में इस तरह आवाज़ आ रही थी, मानों बाहर कोई लडका चकरी घुमा रहा है। मैं बाहर गया, परन्तु मुझे वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। स्वामी जी हँस पड़े। उन्होंने कहा कि तुम किस चिन्तामें बैठे हो। मैंने अपना सन्देह बतलाया, उसपर वे हँसने लगे। उन्होंने षट्चक्रोंका वर्णन किया और बतलाया कि, सूर्य-चक्रको घुमाना पड़ता है। शामको वह आदमी आया और उनको प्रणाम करने लगा। मालूम हुआ कि, वह छूट गया है। जब तक वे साधन करते रहे, तबतक उनका शरीर इतना गर्म रहा, मानो १०६ डिगरीका बुखार हो। सम्भव है कि, यह कठिन परिश्रम के कारण हो या इस कारण कि, योगी दूसरेके कष्टों को अपने ऊपर ले लेते है और उनका निवारण कर देते हैं।

भारतवर्षके विषय में जब-जब मैंने बातचीत की, तब-तब

थे कुछ शान्त रहे। ज़िद करनेपर "कर्म-फल" केवल यही उत्तर दिया। परोपकार की कुछ घटनायें मुझे मालूम हैं। पंजाबमें १६से १८ वर्ष तक के लड़के बहुत गुम होजाते है। न जाने इसका क्या कारण है। बहुत से सरहदी डाकुओंके हाथ पड जाते हैं और वे उन्हें मुसल्मान बना लेते है। इसी तरह एक सज्जनका एक लडका गुम होगया। इनका नाम सुनकर वह इनके पास दौडा आया। इन्होंने कहा,—"जा, रातको स्वप्नमें तुझे संसारके भिन्न भिन्न दृश्य दिखाई देंगे। किसी एक दृश्य में तेरा लडका भी दिखाई देगा। उसको तू आज्ञा देना कि, तू तीन दिनके अन्दर वापिस चला आ।" उसे रात्रिको वैसे ही स्वप्न आवे। एक स्थान पर उसने अपने लड़के को भी देखा। उसने स्वप्नमें आज्ञा दी। बस, तीसरे ही दिन लडका अपने घर वापिस चला आया।

जब यह समाचार मुझे मालूम हुआ, तब मैंने पूछा कि योगी स्वयं ऐसा कर सकते हैं, तब उसको स्वप्न दिखाने और आज्ञा देने की क्या आवश्यकता पड़ी? मुझे उत्तर मिला कि, योगीमें जो शक्ति है, वही शक्ति मूर्छित अवस्थामें प्रत्येक प्राणी में है। यदि उस शक्तिका सदाके लिए विकाश कर दिया जाय, तो वह सदाके लिए योगी बन सकता है। यदि थोड़े समयके लिए इसका विकाश किया जावे, तो उस समयके लिए और उस खास काम के लिए उसमें योगी के बराबर शक्ति आ जाती है। इसलिए जो योगी निर्विकल्प

अवस्था में है, उनको स्वयं कुछ करना नहीं होता। दूसरों में भी वही भाव वह पैदा कर सकता है। स्वामी देवराजजी लोगोंकी सहायता केवल इसी सिद्धान्त पर किया करते थे।

मैं भी उनका चिरकृतज्ञ हूँ। १९१६-१७ में, ८ मास तक मैं एक विचित्र व्याधिसे पीड़ित था। मुझे बैठे-बैठे क्षण भर में मूर्छा आ जाते थे और थोड़ी देरमें शरीर शीतल हो जाता, नाड़ी क्षीण हो जाती और हृदयकी चाल बढ़ जाती थी। यह व्याधि संभवतः प्लेग का टीका लगाने के कारण हुई थी और यह प्रत्येक मास की १६-१७ तारीख़ को होती थी। दो बार अनुभवी डाक्टर कह गये कि, रोगी असाध्य है। तब मैंने अपने एक परिचित, स्वर्गीय पिताजी के एक मित्र, से एक तार श्री स्वामी जी महाराजको दिलवाया। रात्रि से ही मेरी बीमारी कम होगई और मैं तीसरे दिन बाहर घूमने लगा। किसी प्रकार कमज़ोरी अवश्य रह गई थी। जब मैं १९१७ के मार्च महीने में Previous एम० ए० की परीक्षा के लिए प्रयाग गया, तब भी मुझे परीक्षा के एक दिन बाद बेहोशी होगई, परन्तु शीघ्र आराम होगया। १९-२० मार्चको मैं रावलपिण्डी गया। श्री महाराजने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि, मैं तुम्हारी राह देख रहा था। जिस महात्माको महीनों खाने-पीने की परवा न थी और जिसको भोजन कराने और जिस से प्रसाद पानेके लिए सैकड़ों मनुष्य लालायित रहते थे, उन्होंने मेरा सब प्रबन्ध

बड़ी चिन्ता और फिक्र के साथ करके मुझे लज्जित किया। मैंने उनसे प्रार्थना की कि, महाराज मुझे योग का साधन बता दीजिए। उन्होंने कहा, तुम बड़ा अनियमित जीवन व्यतीत करते हो। इस अवस्था में इतनी बीमारी क्यों होनी चाहिए? वेदान्तमें दृढ रहो। आत्मा मरती नहीं—न कभी बीमार होती। शरीर जड़ है, उसमें किसी प्रकार का रोग हो नहीं सकता; इस पर दृढ रहो,—कोई बीमारी न होगी। गीता का श्लोक सुनाया। नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि इत्यादि। तत्पश्चात् कहा कि, जब तुम यहाँ आये हो, तो अच्छे होकर जाओ। मैंने कहा, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

उन्होंने कहा,—"अच्छा, काम शान्ति-पूर्वक तुम एकाग्रचित होकर दूसरी समाधि में बैठ जाना। पूरे दो घंटे बैठना।" मैंने आपत्ति की कि, महाराज चञ्चल मन तो शान्त होता नहीं, फिर यह कैसे हो। तिसपर उन्होंने कहा,—"ऐं! मन एकाग्र नहीं होता, बराबर होगा।" इतना कहकर वे शान्त हो रहे। उसी क्षण मेरे विचारों का आना और जाना सर्वथा बन्द होगया। प्रायः १५-१६ मिनिट तक यह दशा रही। यह जीवनका पहला अनुभव था कि, मुझे मालूम हुआ कि मन भी शून्य और एकाग्र हो सकता है। उसके बाद वे पुनः ऊँघने लगे। योगीका प्रभाव हट गया। अपनी शक्ति उन्होंने खींच ली और मैं पुनः अपने आस-पास प्रकृतिके भेदों को देखने लगा। दूसरे दिन मैं नियमित समय पर बैठा।

दो घण्टे में २० मिनिट कम रह गये थे कि, मैं उठ आया। स्वामीजी ने अपने कमरेमें से कहा,—"अरे! २० मिनिट पहले क्यों उठ आया!!! उसके बाद से मैं आजतक स्वस्थ हूँ और जिन्होंने मुझे पहले देखा था और अब देखा है, उनको स्वयं मेरे शारीरिक स्वास्थ्य में बहुत कुछ तब्दीली मालूम होती है। हृदय-रोग आदि सब रोग नष्ट होगये। रोगोंकी स्मृति भी प्रायः नष्ट होगई।

स्वामी देवराज जी प्रसिद्ध विद्वान् थे। साधु-सन्तों से वे वेदान्त, उपनिषद्, गीता और सिक्खोंके धर्म-ग्रन्थोंपर संस्कृत और पंजाबीमें वार्तालाप किया करते थे। रात-रातभर श्लोकोंकी वर्षा होती रहती थी। उनके कहे हुए बहुत से श्लोक अप्रकाशित थे! किसी ने भी उनको ग्रन्थके रूपमें लानेका प्रयत्न नहीं किया। स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के शिष्य श्रीयुत पूरणजीके साथ स्वामीजी छः मास तक रहे हैं। पूरणजी उन्हें देहरादून ले गये थे। उनको इनका विशेष हाल अवश्य मालूम है।

समाधि लेने के पूर्व ही स्वामीदयाल जी काश्मीर से बिना बुलाये उनके पास आगये। उस समय मैं भी पहुँच गया। मैं उनके दर्शन करके और ३ दिन पास रहकर प्रयाग वापिस आने लगा। कानपुरमें मुझे पत्र मिला कि "आपके परम प्यारे स्वामी देवराजजी महाराजने एकाएक समाधि लेली।" स्वामी देवराज जी यद्यपि अब संसारमें नहीं हैं, परन्तु स्वामी-

दयालजी से अब भी लोग बहुत कुछ आत्मोन्नति कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि स्वामी देवराज जी का वृत्तान्त और अक्षरशः सत्य वृत्तान्त सुनकर और उनका फोटो देखकर बहुतसे सज्जन यह सोचते होंगे कि, यदि हमें भी दर्शन हो जाते तो अच्छा होता। इसी प्रकार स्वामी रामतीर्थ के जिन्होंने दर्शन नहीं किये, वे वर्षों पछताते रहे। इसलिए सत्सङ्ग का अवसर जब मिले—जब कभी किसी महात्माका पता लगे—उसे हाथ से न जाने देना चाहिए।

स्वामी देवराजजी की मूर्त्ति दर्शनीय है, इसलिए वह बड़े परिश्रमसे प्राप्त करके, इस संस्करण में दी जा रही है कि, योग-प्रेमी दर्शन-लाभ करें। जिस समय यह फोटो ली गई थी, उनकी अवस्था ८७ वर्ष के क़रीब थी। उन्होंने ९४ वर्ष की अवस्था में समाधि ली।

# ब्रह्म-योग-विद्या

## योग ।

योगका अर्थ मेल करना है, अर्थात् चित्तको सब प्रकारकी वृत्तियोंसे हटाकर अपने स्वरूप में स्थित होने का नाम योग है। योगदर्शनका पहला सूत्र यह है,—"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" अर्थात् 'योग' चित्तकी वृत्तिके निरोधको कहते हैं। हर एक पदार्थके देखने-सुनने-सोचने से जो प्रभाव चित्तपर पड़ता है, उसका नाम वृत्ति है। उसके निरोध करने का नाम ही 'योग' है। पहले-पहल बाहरी पदार्थों का असर इन्द्रियों पर पड़ता है। वहाँ से मस्तक द्वारा मन पर आता है, वहाँ से बुद्धि उसका निर्णय करती है, फिर वह कहीं आत्मा तक पहुँचता है ; या

यों समझो कि आत्माका सम्बन्ध मन और बुद्धि से, मन का इन्द्रियों से और इन्द्रियों का विषयों से है।

नेत्र एक इन्द्रिय है। एक टोपी सामने पड़ी है। आँखने उसको देखा, झट उसका अक्स आँख की पुतली पर पड़गया, उसी दम आँख से मस्तक में होकर चित्त पर उसका अक्स खिँच जाता है। अस्तु, इन्द्रियोंके विषयोंसे जो प्रभाव चित्त पर पड़ता है उसी को वृत्ति कहते हैं। इसी वृत्ति के निरोध का नाम 'योग' है।

जब नाश नहीं, तो अविनाशी कैसा और साक्ष नहीं तो साक्षी कैसा? जब संशय हो तो उसे दूर करना चाहिये; जब संशय है हो नहीं, तो दूर करना किसका? जहाँ बीज नहीं, तो फल-फूल-वृक्ष कहाँ? पाप नहीं तो पुण्य कहाँ? दुःख नहीं, फिर सुख कहाँ? तब द्रष्टा, दृश्य, दर्शन कहाँ? जब तक वृत्ति का उठना बाकी है, पूर्ण शान्ति कहाँ? जब तक यह विचार नहीं है कि मैं नाम से रहित हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, तब तक वह ब्रह्मपद कहाँ? ये शब्द तो साफ़ कमी दर्शाते हैं। "भ्रम" की कृति के बीज शेष हैं।

जबतक चित्त की वृत्तिका निरोध नहीं कर लिया जाता, चाहे वह किसी भी दशा में क्यों न हो, तब तक मन का विषय वर्तमान है। इसका द्रष्टा अर्थात् आत्मा अपना स्वरूप वैसा ही समझता है, जैसी कि मनकी वृत्ति रहती है और उन्हीं वृत्तियोंके अनुसार सुख और दुःखका अनुभव होता है।

जिस प्रकार चुम्बक-पत्थर अपनी शक्ति से पासके रक्खे हुए लोहे को खींच लेता है, उसी प्रकार वृत्तियां, जबकि वे रोकी नहीं जातीं, विजयोंको अपनी ओर खींचती हैं। आप जानते है कि,जिस समय तक पानी की लहरें उठ रही हैं, उनमें किसी पदार्थ का प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं दे सकता और जब तक आईना—दर्पण—मैला रहता है,कोई भी अपने मुँह को उसमें नहीं देख सकता। इसी प्रकार जबतक मनका प्लेट(तख़्ता) साफ और दर्पण के समान नहीं हो जाता, तब तक हम अपने स्वरूप का अनुभव करनेसे वञ्चित रहते हैं।

इसी एकाग्रता का नाम 'योग' है। मैस्मरेज़म, हिप्नॉटिज़्म, आकर्षण-विकर्षण सब इसकी ही शाखायें हैं।

ऐ भारत! तूने उन्नति की तो हद दर्जे की और अवनति की तो वह भी हद दर्जेकी। कहाँ वह समय था, जबकि योगीश्वरों और मुनीश्वरो की कृपा से भारतवर्ष में योग का इतना प्रचार था कि, लोग यह प्रार्थना ईश्वर से करते थे कि, हमारा जन्म हो तो भारत देशमें! आज इस पवित्र विद्या पर भारतवर्ष के लोग विश्वास ही नहीं करते!

जिस समय कुरुक्षेत्रके युद्धस्थान पर कौरव और पाण्डव दोनो के बीच लड़ाई छन रही थी, तब सञ्जय हस्तिनापुर में बैठे-बैठे कुरुक्षेत्रके, सौलोंको दूरीके, समाचार धृतराष्ट्रको सुना रहे थे। बताओ, उनके पास कौनसा टेलिग्राम था, जिसके सहारे पल-पल के समाचार वे देते रहते थे? सोचो और सम-

भोगे, तो पता लगेगा कि, यह सारा भेद "योग" में था और है। जबकि अपने भाई-भतीजोंको लड़ाई के लिये तय्यार खड़े देख कर, अर्जुन ने अपने शस्त्र फेंक दिये थे और निकम्मा बन बैठा था, तब कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को अपना विराटस्वरूप दिखलाया और लड़ाईमें जो होनेवाला था, सबका फोटो सामने खींच दिया, उसको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर करा दिया; जिसको देखकर अर्जुन को लड़ाई के लिए तैय्यार होना पड़ा। यह क्या था? योगाभ्यास करो तो तुमपर इसका भेद खुल जायगा। दो लेकचरर (उपदेशक) आपके यहाँ आये हुए हैं। एक आध घण्टा बोलकर सैकड़ों को अपना बना लेता है; दूसरा वर्षों चिल्लाता है परन्तु कुछ नहीं होता। कोई उसको सुनता ही नहीं। इसका असली कारण क्या है? एक के विचार दृढ़ हैं, लोगों से कहने के पहले अपनी आत्मा से उसने सब कुछ कह दिया है, उसकी आत्मा ने उसे सुन लिया है। उसके विचार पहाड़ से भी अधिक दृढ़ हैं, इसलिए वह दूसरों पर प्रभाव डाल सकता है। दूसरा उपदेशक अभी अपने आत्माको ही सन्तुष्ट नहीं कर सका है। जो कुछ वह कहता है, उस पर उसका विश्वास नहीं है। तब भला वह दूसरों को कैसे विश्वास दिला सकता है।

एक पहलवान में और एक कुली-मजदूरमें क्या भेद है? कुली दिन-भर मिहनत करता है, परन्तु वह पहलवान नहीं हो जाता। पहलवान केवल एक घण्टा व्यायाम करता है। और वह

दङ्गल में अपने बराबरी वाले को मार भगाता है। यह क्यों? सोचो तो मालूम होगा कि, कुलीका ध्यान शरीरोन्नति की ओर उतना नहीं है, जितना कि पहलवान का। वह कसरत करते समय अङ्ग-अङ्ग पर अपनी विचारशक्ति की लहर भेजता है और सोचता है कि, मेरे ये-ये अङ्ग सुदृढ़ और बलवान हो रहे हैं। कुली मिहनत को बोझ समझता है, जहाँ मालिक आँखकी ओट हुआ कि, झट काममें आनाकानी करने लगता है।

विचार करतेही शत्रु मित्र हो जाता है। उसकी तरफ़से बुरे विचार दूर कर दो, वह तुम्हारा मित्र हो जायगा। प्रेमकी लहरें यदि तुम दिलसे उठाओगे, तो निस्सन्देह साँप-बिच्छू भी अपने स्वभावको छोड़ देंगे। शङ्करस्वामी वर्षों जङ्गलमें पड़े रहे, परन्तु किसी भी घातक पशु-पक्षीकी हिम्मत न हुई कि, उनको रत्तीभर भी हानि पहुँचा सके। अमेरिका का प्रसिद्ध तत्त्वज्ञ एमरसन (Emerson) लिखता है कि, मेरा गुरु जिस कमरेमें रहता था, उस कमरेमें बरोंका एक छत्ता लगा हुआ था, जिस समय वह सोता था उसकी खाट पर बरें बैठी रहती थीं। जब वह चलता था, साँप तक उसके पैरोंमें लिपटते थे; परन्तु उसको हानि नहीं पहुँचा सकते थे; वह प्रेमकी शान्त मूर्त्ति था। वह जीता-जागता शङ्कर था। यह प्रेम-युक्त विचार की शक्ति का नमूना है।

जिनका विचार है कि, दसवें द्वारसे पवन चढ़ानेसे दुःख-सुख हटकर परमानन्द प्राप्त होता है, वे बड़ी भूलमें हैं;

यह आनन्द सङ्कीर्ण है। मन अभी साथ है। जगत्को दुःख-मय जानकर और कायर बनकर वह भागता है। इन्द्रियोंको समेटकर सुरतको चढ़ाता है—अपने स्वरूपमें लीन रहता है—परन्तु मन यहाँ पर भी नाश नहीं होता। यह बीज अवश्य लगेगा—संसाररूपी बीज कभी न कभी अवश्य लगेगा—तब इससे क्या वह लाभ प्राप्त हो सकता है जो—आँख खुली है, हाथ पैर काम कर रहे है,फिर भी आत्मा अपने में लीन है—इस जीवन-मुक्त दशासे प्राप्त होता है।

स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्दजी आदि के पास क्या था कि, लोग उनके पीछे-पीछे फिरते थे और उनके एक-एक शब्दको बड़े ध्यान के साथ सुनते थे। स्वामी रामतीर्थ जब लेक्चर देने के पश्चात् जङ्गलकी ओर चल देते, तो लोग भी उनके पीछे-पीछे चले जाया करते और स्वामीजी को प्रेमवश अद्वैत-मार्गपर अपना भाषण आरम्भ करना पड़ता था। स्वामीजीके पास सच्चे प्रेमकी एक डोरी थी, जिसमें सब जानदार प्राणी बँधे हुए थे और चारों तरफ़ प्रेमही प्रेम देखते-सुनते और अनुभव करते थे। मनुष्यको पशुपक्षियोंमें सबसे ऊँचा दर्जा दिया गया है। परन्तु, क्या इसका यह आशय है कि मनुष्य अपने अधीन मूक पशु-पक्षियोंको तङ्ग करे, ऐसा दुःख देवे या क्रूरतासे पेश आवे? नहीं, नहीं, वरन् उनके साथ तुम्हें दयासे वर्तना चाहिये—क्योंकि वे बेचारे हमारे अधीन हैं। मनुष्यको चाहिये कि उनके साथ

ऐसा वर्ताव करे कि, जिससे उनको रत्तीभर भी कष्ट न हो; फिर देखो प्रत्यक्षसे तुमको इसका क्या फल मिलता है। साथ-साथ यह तुम्हारा नैतिक कर्तव्य भी है।

जिस समय रेलगाड़ी हिन्दुस्थानमें नहीं चली थी, यदि कोई मनुष्य उस समय आपको रेलगाड़ीके लाभ सुनाता और बतलाता कि, आग और पानी लाखों मन बोझको मिनिटोंमें कहींसे कहीं पहुँचा सकते हैं—आदमियोंको अपने ऊपर सवार कराके, बड़े आरामसे, उनके वर्षोंके रास्तेको घण्टोंमें तय करा सकते हैं, तो आप उसको पागल और निरा मूर्ख समझते। परन्तु ये सब बातें ठीक थीं, जैसा कि आज हम देखते हैं।

ऐसेही, इस समयमें, जबकि हमारे ऋषियोंकी पहली विद्यायें गुम हो गई हैं—लोग उन सच्ची बातोंको भी स्वप्न-वत्—तिलिस्म--समझते हैं। यदि हम कहें कि पहलेके लोग वरुणास्त्र चलाकर जलकी मूसलाधार वर्षा करते थे, जिससे शत्रु-सेनामें जलही जल हो जाता था या अग्नि-अस्त्र चलाते थे जिससे सब लोग जलने लगते थे या मोहनास्त्र चलाते थे, तो ये सब बातें आजकलके लोगोंको मनगढ़न्त मालूम होती हैं। हमने अपने पवित्र मार्ग योगपर अवलम्बित होना छोड़ दिया है, इस कारणसे ये सब बातें हमारे ध्यानमें नहीं आतीं। यदि ज़रा विचार किया जाय, तो इसकी सचाई, आपसे आप, आपपर प्रकट हो जायगी। जबकि समस्त वायु-मण्डलमें

जल के परमाणु भरे हुए हैं, तो यदि एक योगी अपने योग-बलसे जलतत्वका ध्यान करके आस-पासके परमाणुओंमें आकर्षण पैदा करे और पानी बरसावे, तो क्या उसके लिये यह कार्य कठिन है? ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ बिजली न हो। यदि एक योगी या आकर्षणी-विद्याका प्रयोक्ता उसमें आकर्षण पैदा करके, उस बिजलीके सहारे, हज़ारों आदमियोंको बेहोश करदे, तो क्या यह असम्भव है? कदापि नहीं। ये सब बातें एक योगीके बायें हाथके खेल हैं। लोग हँसते हैं जब उनसे कहा जाता है कि, अर्जुनके राजकुमार अभिमन्युने, गर्भस्थ दशामें ही, चक्रव्यूह-भेदन सीख लिया था और जब कि अर्जुनके और कार्यमें लगे रहनेके कारण कौरवोंने युद्धका सन्देसा भेजा, तो वही शूरवीर अभिमन्यु लड़ाईके लिये गया—परन्तु उस वीरशिरोमणिने गर्भमें व्यूहसे निकलनेकी विधि नहीं सुनी थी, इसलिये रणमें खेत रहा।

ये वे भेद थे, जिन्होंने भारतवर्षका सिर सारे संसारमें ऊँचा रखा। यह वह देश था, जहाँ माँके पेटमें ही लड़के योग्य और सुयोग्य बनाये जाते थे।

आज-दिन भी उसी तरह गर्भस्थ बालकको शिक्षा दी जा सकती है, यदि लोग योगका आश्रय लेवें और स्वयं योगी बनें।

# योग-विद्या का वेदान्त से सम्बन्ध।

यह चलता-फिरता खाता-पीता साढ़े तीन हाथ का शरीर है। इसे तो आप सब लोग जानते ही हैं, परन्तु एक सूक्ष्म शरीर और भी है, जो जन्म लेते और मरते समय भी आत्माके साथ रहता है। यह पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और बुद्धि,—ऐसी सत्रह वस्तुओंसे बना हुआ है। इस सूक्ष्म शरीर से जीवात्मा सूक्ष्म भोगों को भोगता है। तीसरा एक कारण-शरीर है, जिसमें सुषुप्ति—नींद—प्राप्त होती है।

इन सबके सिवा एक चौथा शरीर और भी है, जिसमें कि साधु-महात्मा लोग समाधि-अवस्थामें ब्रह्मानन्दमें मग्न रहते हैं। इन शरीरोंमें ही जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति व तुरीयावस्थाओं का मेल होता है। मनुष्य जाग्रत अवस्थामें स्थूल शरीरसे काम लेता है, स्वप्नमें सूक्ष्मसे। उस समय उन वासनाओंसे, जो कि जाग्रतावस्थामें उसके चित्तमें पैदा हो चुकी है, वह स्वप्नमें नाना भाँति के ठाटबाट बनाता है। जाग्रतावस्थामें जबकि हमारी बुद्धि—रूप, रस, गन्धादि स्थूल पदार्थों में रहती है, तब

आत्मा को स्थूल का भोगनेवाला कहते हैं और जब आत्मा सूक्ष्म रचनामें मग्न रहता है, तब उसे सूक्ष्मका भोगनेवाला कहते हैं। जाग्रतमें आत्मा स्थूलमें, स्वप्नमें सूक्ष्ममें और सुषुप्तिमें कारण-शरीरमें रहता है। परन्तु आत्मा एक ही है, केवल उसके रहनेके स्थान अलग-अलग हैं।

हमारा आत्मा पांच कोषोंके अन्दर छिपा हुआ है। जब-तक हम इन परदोंके भीतर घुस न जावें, तबतक हमें उसका दर्शन दुर्लभ है। सबसे ऊपरका परदा 'अन्नमय कोष' कहाता है। चर्म, मांस, रुधिर, हड्डी आदिसे बना हुआ जो शरीर है, वेदान्त परिभाषामें उसे अन्नमय कोष कहते हैं। यह अन्नमय इसलिये कहाता है कि, अन्नसे ही इसका पालन-पोषण होता है।

इस अन्नमय कोष के अन्दर और उससे सूक्ष्म "प्राणमय" कोष है। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान,—ये पांच पवन शरीरमें स्थित हैं। प्राणवायुका स्थान हृदय है। यह श्वासके चलानेका कार्य करता है। अपानवायुके द्वारा मल-मूत्रका त्यागन होता है। गुदा इसका स्थान है। समानवायु नाभिमें रहता है—और भोजनादिसे जो रस बनता है, उस को शरीर-भर में पहुँचाता है। उदानवायुका स्थान कण्ठ है। जो कुछ और अन्न खाया-पिया जाता है, उसे वह अलग-अलग करके खींचता है। व्यानवायु सारे शरीरमें रहता है। भूख, प्यास नींद आदिकी इच्छा इसीके द्वारा होती है।

इस प्राणमय कोषके अन्दर और इससे भी सूक्ष्म "मनोमय कोष" है, जिसके द्वारा सङ्कल्प-विकल्प और अहङ्कार उत्पन्न होते हैं। इस मनोमय कोषके अन्दर और इससे सूक्ष्म विज्ञानमय कोष है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, जो कि ज्ञानको ग्रहण करती हैं, और छठवीं बुद्धि,—ये सब मिल कर विज्ञानमय कोष बनाती हैं।

इस विज्ञानमय कोषके अन्दर आनन्दमय कोष है, जहाँ तुरीयावस्थामें आत्माको लय प्राप्त होता है।

जिस समय साधक अभ्यास करते-करते चित्तको स्थिर और बुद्धिको सूक्ष्म कर लेगा, उस समय इन परदोंके भेद उस पर आपसे आप खुल जायँगे—और वह सबसे अन्तिम परदे के अन्दर घुसकर अपने आत्माका साक्षात्कार करेगा। जिस समय इस अवधि तक साधक चला आयेगा—सिद्धियाँ सब उसके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी। अब योगी केवल विचार या संकल्पसे ही अदृश्य हो जायगा। बहुत लोग इसको सुनकर आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि, एक असम्भव बात किस तरहसे सम्भव हो सकती है, परन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि कोई वस्तु उस समय तक देखी नहीं जा सकती, जब तक कि उस वस्तुमें दिखाई देनेकी शक्ति और देखनेवाले में देखनेकी शक्ति न होवे; दोनों का होना ज़रूरी है। यदि वस्तुमें दिखाई देनेकी शक्ति है—परन्तु देखने वालेमें देखनेकी शक्ति नहीं—तो वह वस्तु नहीं दीख

सकती। यदि वस्तुमें दिखाई देनेकी शक्ति नहीं, तो कोई उसे नहीं देख सकता।

इसी सिद्धान्त पर जब योगी अपने शरीर की "ग्राह्य शक्ति' का संयम करता है, तब उसे कोई नहीं देख सकता।

यदि योगी चाहे, तो वह सैकड़ों हाथियोंके समान बलवान हो सकता है। बल कोई स्थूल पदार्थ नहीं है ; क्योंकि यदि यह कोई स्थूल पदार्थ होता, तो सब मोटे आदमी पतले आदमियोंसे अधिक बलवान होते, परन्तु ऐसा नहीं होता। शक्ति तेज पर निर्भर है।

योगी अपने शरीरकी बिजलीको प्रवाहित करके उसे हाथियोंकी शक्तिसे मिलाता है और इस तरह बड़ी भारी शक्तिको प्राप्त करता है। जबकि एक चिराग़ से दूसरा जलने लगता है, तब योगीके लिये यह कौनसी बड़ी बात है?

उदानवायुके संयमसे वह अपने शरीरको पानी के ऊपर भी तैरा सकता है। ऐसे योगीको पानी नहीं डुबा सकता ; न वह दलदलमें फँस सकता है; क्योंकि उसमें ऊपर उठनेकी शक्ति है। क्षण-क्षण में अपने शरीरको बदल लेना, भूख-प्यासका न लगना, दूर-दूर के स्थानों का समाचार पाना—अपने शरीरको अग्निके समान तेजवान बना लेना इत्यादि बहुतसी सिद्धियाँ योगीके वशमें हो जाती हैं। ऊपर चढ़ना

अध्यात्म-विद्याका लक्ष्य है, यही हिन्दुओं का विकाश-सिद्धान्त (Evolution) है।

ऐ भव्य जीवों! चित्तको स्थिर रखकर हृदयकी गुफामें ज्ञानका चिराग़—दीपक—जलाओ; ताकि उसके प्रकाश से सब कुछ दिखाई दे।

# प्रथम खण्ड

## मानसिक योग के चार मुख्य साधन

### मानसिक समाधि

### SELF HYPNOTISM

हठ-योगी जिस प्रकार षट् चक्रों से अपने प्राणोंको ऊपर चढ़ाकर समाधि लगाते हैं, उसी प्रकार मानसिक योगी भी अपने पास कई एक सरल साधन रखते हैं। मानसिक योगका प्रत्येक साधन सरल और बेडर होता है। समाधिके लाभ महात्मा पुरुष जानते हैं। सदेवका भ्रम मिटकर आनन्द ही आनन्द रह जाता है। समाधिके चमत्कारों में से एक, उदाहरणार्थ, यहाँ लिखते हैं :—

किसी मद्दर् भांडने एक महात्माकी बड़ी सेवा की। जाते समय महात्माने उसे समाधिका साधन बता दिया। बस अब क्या था? भांड रात-दिन इसी विचार में मस्त रहता कि, अकबर बादशाहको इसका चमत्कार दिखलाकर, जिन्दगी-भर के लिये, एकही जगहसे रोटी पाया करूँगा। अकबर बादशाहको हिन्दुओं पर बहुत विश्वास था। ज्योंही यह भांड उनके पास पहुँचा और अपना करतब कह सुनाया, वह राज़ी हो गये और एक दरबारमें उसे अपना चमत्कार दिखलानेको कहा। दरबार किया गया और वह भांड आसन लगाकर समाधिस्थ हो गया। कुछ दिनों तक वह एक अलग घरमें रक्खा गया। फिर दरबार करके, उसके कथनानुसार, उसके बदन पर नश्तर लगाया, चिनगारी रक्खी, परन्तु वह बेसुध नहीं जागा। उस समय सचमुच वह ब्रह्मानन्दमें मग्न था। समाधि लेते समय इसने उठने के समय का ध्यान नहीं किया था, इसीसे हजारों उपाय करने पर भी अकबर बादशाह उसे उठा न सके।

अकबरने जब देखा कि, यह किसी प्रकार भी नहीं जागता है, तो यह सोच कर कि शायद अपने आप जागे, एक वर्ष तक उसे एक मैदान में रखकर उस पर कड़ा पहरा रखवा दिया, परन्तु निष्फल हुआ। अन्त में यह जान कर कि, यह मर गया है उसे एक गुफामें छिपवा दिया।

एक दिन सरदार शिकार खेलता-खेलता उसी वनमें जा निकला, जहाँ पर कि वह भांड गुफामें पड़ा था। बेधड़क

वह उस गुफा में शिकार मिलने की आशा से घुस गया। शिकार न मिला, परन्तु एक आदमीको वहांसे खींच कर वह बाहर लाया। देखने से यह मालूम होता था कि कोई युवक पुरुष अभी सोया है; पर धूल और गर्द से उस का सब शरीर बहुत ही मैला हो गया है, सांस बन्द है, यह देख कर उसने सोचा कि यह मुर्दा है और बड़े ज़ोर से उठाकर दूर फेंक दिया।

दूर फेंकना ही था कि, चोट के धक्के से उसकी समाधि खुल गई। बड़े ज़ोर से पुकार कर वह कहने लगा कि, अकबर बादशाह तेरा प्रताप युग-युग बढ़े।

प्यारे मानसिक योग के सीखने वालो!

आप बड़ा आश्चर्य करेंगे कि यह क्या बात है। कहाँ अकबर का राज्य कहाँ? आज सिक्खों का ज़माना, २५० वर्ष का फ़र्क। उसको और उसके गुरु को समाधि में कोई भी अन्तर नहीं था, परन्तु बुरी वृत्ति होनेसे उसका सारा योग निष्फल गया।

आज आप लोगों को एक अद्भुत और सरल साधन मानसिक समाधि का देते हैं। आज ही से कार्य्यका आरम्भ कीजिये।

## समाधि का साधन

आँख की पुतली को शास्त्र वाले निरञ्जन कहते हैं। जिस

प्रकार रेलगाड़ी का इञ्जन सारी गाड़ी को चलाता है, उसी प्रकार हमारे आध्यात्मिक शरीर के इञ्जन यही नेत्र है।

बाज़ार से एक शुद्ध साफ़ बड़ासा दर्पण मोल ले आवें या कुछ दिनों के लिये किसीसे मांग लें और उसको अपने सामने किसी चौकी पर स्थापित करें। पीठ उत्तर की ओर रहे और मुँह दक्षिण की ओर। दर्पण के बीच में बाईं आंख की पुतली की टकटकी अर्थात् अपने दृश्य का केन्द्र नियत करें और दत्तचित्त होकर दृष्टि करें और ध्यान करें कि, हमारी आकर्षण-शक्ति ( मिक़नातीस ) निकलकर पुतली में जाकर दिल और दिमाग दर्पण के प्रतिबिम्बमें जारही है और वह दर्पण वाला मनुष्य ( इसे अपनी छाया नहीं समझना चाहिये ) अभी बेसुध होता है। कई व्यक्ति १५ दिन में, कई १६ और कई २६ दिन में उद्‌घाटित ज्ञानचक्षु या समाधिस्थ या किसी और अन्य दशा को प्राप्त कर लेते है। आप पर भी यह दशा कुछ न्यून या अधिक अवश्य होगी। यदि आप टकटकी लगा कर, बिना पलक गिराये, एक घण्टे देखनेके साधनको कर चुके हैं, तो बहुत जल्दी इसमें उत्तीर्ण होंगे।

समाधिके समयमें नाड़ी और श्वासा इत्यादि सब बन्द होजाते हैं। वह समय उमर में नहीं लिया जाता अर्थात् उमर श्वासों पर मुक़र्रर है। जिसकी श्वासा जल्दी ख़तम होगी, उसकी आत्मा को शरीर जल्दी छोड़ना होगा।

मान लो, किसी आदमीकी अवस्था, बे ज्योतिषी भी हज़ारों

वर्ष पहिले चन्द्र और सूर्य्यग्रहण बतला दिया करते हैं, ९० वर्ष को बतलावें और यदि किसी योगी ने उसको ११ वें वर्ष में समाधिका साधन बता दिया है और वह २० वर्ष समाधिमें रहा, तो जागने पर उसके ग्यारहवें वर्ष का ही आरम्भ होगा।

# आवाहन।

## ( SPIRITUALISM )

पहले तुम एक चौकी इस प्रकारकी तैयार करो, जिसमें लोहेकी कील न हो और चौकी हल्की हो; फिर पूरे घरको या एक कमरे को काले या नीले रङ्गसे रँग दो या केवल नीले रङ्ग के कागज़ दीवारों और छतपर लगा दो। बैठनेका आसन भी नीला कर दो। जितने मेम्बर—सभासद्—बनना चाहते हो, आपसमें यह ठान लो कि इस मन्दिर के भीतर कदापि न बोलेंगे और न कोई इशारा—संकेत—करेंगे। एक योग्य पुरुष को, जिस पर सबका विश्वास हो, सभापति बनाओ। जिन बातों को वह बाहर समझाकर अन्दर आवे, ज़रा से इशारे से उन्हें समझ लो, फिर देखोगे कि थोड़े ही दिनोंमें उस योग-मन्दिरमें कैसे चमत्कार दीखते हैं।

आवाहनको सरकिल या चक्र बैठालना भी कहते हैं। सरकिलमें तीन मनुष्यों से कमको कभी नहीं बैठना चाहिये और ग्यारहसे अधिकके बैठनेसे मेडियम्*पर असर बहुत हो जायेगा; जिससे बहुत डर है कि मीडियम् किसी योग्य

---

* मामूल जिस पर अमल किया जाता है।

पुरुष के विना न उठे और कोई दुष्टात्मा आकर उसको किसी प्रकारकी पीडा न दे। अब प्रयोक्ताके लिये हमने चार साधन मुक़र्रर किये हैं। उनको पहिले परिपक्व कर लेना चाहिये, जिससे किसी कार्य में विघ्न न पड़े और प्रयोक्ता बहुत जल्द अपने उद्देश्यमें सफल होजाय।

चक्रमें बैठनेवालों के लिये ये चार साधन अति आवश्यक हैं:—

( १ ) नेत्रोंकी आकर्षण-शक्ति बढ़ाना और एक घण्टे तक, बिना पलक झपकाये, टकटकी लगाकर देखते रहना।

( २ ) पास करना।

( ३ ) इच्छा या सङ्कल्प शक्ति ( Will-power ) को बढाना।

( ४ ) शक्ति का असर किसी वस्तुमें डालकर उससे काम लेना।

## ( १ ) आकर्षण-शक्ति को बढ़ाना।

एक शालिग्रामकी मूर्त्ति को, अपने सामने दो फुट की दूरी पर, ज़रा ऊँचे स्थानपर, स्थापित करो और उसमें किसी विन्दुको अपना लक्ष्य मानकर उसकी ओर टकटकी लगाकर देखना आरम्भ करो। जहाँ तक हो सके, आँख न झपकाओ। जब देखो कि आँखोंमें पानी बहुत आगया है, आँख झपका कर पानी गिरा दो और फिर देखने लगो। जब एक घण्टे

तक बिना पानी आये और बिना पलक झपकाये देख सको, तब जान लो कि तुम्हारा पहला साधन पूरा हुआ। इस प्रकार एक काले बिन्दु पर भी देखा जाता है। वह बिन्दु एक चौअन्नी के बराबर गोलाकार होता है।

## ( २ ) पास करना

ऊँची चौकीपर शालिग्रामकी मूर्त्तिको या एक तख्तेको अपने समीप रक्खो और अपने दोनों हाथों के पोरों को बिना छुए इधर-उधर फिराओ और दृढ विचार करो कि, तुम्हारे हाथोंसे आकर्षण-शक्ति श्वेत धुयेंके समान सूक्ष्म रूपसे निकलकर उसमें भरी जा रही है। फिर उलटा विचार करो कि, शालिग्रामकी शुद्ध विचार की शक्ति और तुम्हारे भरे हुए विचार की शक्ति, तुम्हारी उँगलियोंके द्वारा, तुम्हारे शरीर में आ रही है। जब एक घण्टे तक बिना थके यह कामकर सको, तब जान लो कि तुम्हारा दूसरा साधन समाप्त हुआ।

## ( ३ ) इच्छा-शक्ति को बढ़ाना

(Will-power इच्छा या सङ्कल्प-शक्ति)

सरदार हरिसिंहजीके समयमें एक दिन आधी रात को चढ़ाई करनेकी आज्ञा मिली, क्योंकि सिक्खोंके जीते हुए अपने इलाकेमें बलवा फैला हुआ था। जो घुड़सवार रवाना

हुए, उस समय उस दलके अफसर साधू नन्हंगसिंह जी थे। कम्पनी के सूबेदारोंमें से एक सरदार को कोई सिद्ध पुरुष मिल गया था, जिसने उनको मानसिक पूजाका मार्ग बतला दिया था अर्थात् वह प्रातःकाल उठकर आराम से आसन पर बैठ जाता और अपने इष्ट गुरुके ध्यानमें ऐसा मग्न हो जाता, कि उसके पास मानसिक मूर्त्ति स्थूल रूपमें बनकर चली आती थी। वह सोने-चाँदीकी थालियों और कटोरोंमें नाना प्रकारके व्यञ्जन—मिठाई फल-फूल चन्दन धूप दीप इत्यादि—रख लेता और अपने इष्टदेव के तिलक लगाता, भोग लगाता और उनके प्रेम में मस्त रहता। इसी प्रकार तीन वर्ष से करता चला आता था। प्रातःकाल हुआ, इधर उसकी पूजाका समय आ गया, परन्तु साथी कहाँ ठहरते थे। लाचार साधुजी घोड़ेपर ही अपने इष्टदेवका ध्यान करने लगे।

रङ्ग-विरङ्गकी वस्तुओंको लेकर और थाल इत्यादि को मँगाकर पूजन आरम्भकर दिया। उस समय जबकि साधुजी ध्यानमें मग्न थे, घोडा भी धीरे-धीरे चलने लगा। दो कोस पर जाकर साधु नन्हंगने पूछा कि सरदार कहाँ हैं? सबने उत्तर दिया कि सरदार प्रतिदिन प्रातःकाल के समय मानसिक योगका साधन किया करते है, कहीं पीछे अटक गये होंगे। नन्हंग साधुसिंह अत्यन्त क्रोधित हुए और कहने लगे,—"हाय! यह भजनका कौनसा समय है। सारा देश पठानों से लुट गया। प्रजा कष्ट भोग रही है। हमारे कई सिंह-

भाई मारे गये, परन्तु सरदार अपने साधनमें मग्न हैं।" इतना कहकर घोड़ेको पीछे दौड़ाया। दो कोस जब पीछे चले आये, तब क्या देखते हैं कि, सरदार घोड़ेपर बैठे हैं और घोड़ा धीरे-धीरे आ रहा है। इस दशामें सरदारको देखकर साधु नन्हंग सिंह क्रोध में आ भला-बुरा कहने लगे; परन्तु सरदार अपने प्रेममें मग्न था। उसको चढ़ाई से क्या काम? साधु-सिंहने पास जाकर उस सरदार पर एक बड़े ज़ोर का हण्टर फटकारा। हण्टर लगते ही छन-छन छन-छन छन-छन छन-छन छन-छन की आवाज़ आई और आँख खुल गई। सब वस्तुयें मूर्त्तिको छोड़कर प्रत्यक्ष दिखाई देने लगीं। थाली और सोने चाँदीके कटोरोंका ढेर लग गया। नाना प्रकारकी मिठाई फल इत्यादि सामने मनों पड़े दिखलाई देने लगे। नन्हंग साधुसिंह उस सरदार के चरणो पर गिर पड़ा और कहने लगा,—"महात्मा क्षमा करो।" बस, सरदारने इस साधनके अन्तिम चमत्कार को देखकर घोड़ा साधुसिंहके हवाले किया और आप साधु होकर देश में भ्रमण करने लगा। योगाश्रम में दो सज्जन मानसिक पूजा करते थे। एक चमत्कार भी दिखाना चाहता था। इस ब्राह्मण-देवता का अनोखा चमत्कार यह था कि, साधन करते समय कुछ पेड़े और अनार के दाने अपने पास रख लेता और यह विचार करता कि, अब भी इष्टको वस्तुयें मँगवाई हैं। परन्तु दो पेड़े पड़ने को पड़ा है। इस मानसिक पूजा द्वारा-अपने

इष्ट देवका भोग लगाना, तो अवश्य ही भमार के दाने और पेड़े कम होजाते।
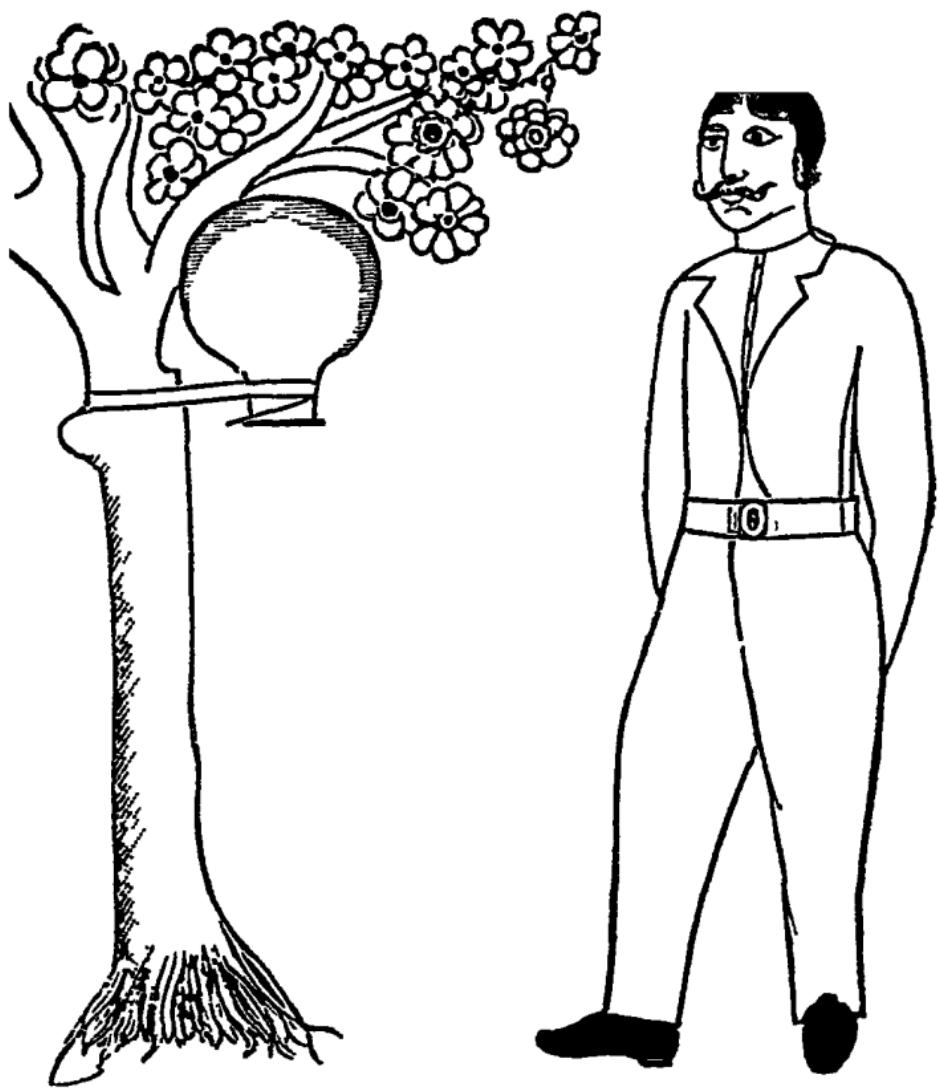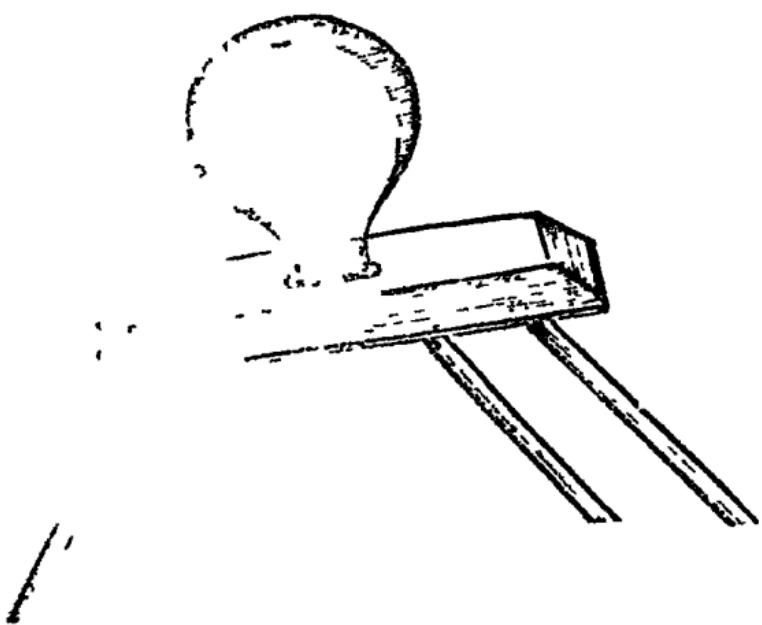
परन्तु तुम इस साधनको इस समय ऐसा करो कि बाघ—शेर—या सर्प को असली मूर्त्तिका ध्यान करो। जिस दिन मूर्त्ति ठीक जम जायगी, तुम मारे डर के कांप उठोगे।

# चौथा साधन।

कुम्हारके यहां से मिट्टीका कच्चा घड़ा ले आओ और किसी बाग़ीचे या निर्जन स्थान में किसी दरख़्तके साथ इस प्रकार बांधो कि, घड़ेका मुँह नीचे को रहे और पृथ्वी से दो गज़ ऊँचा रहे। तुम उस घड़े से पाँच गज़की दूरी पर खड़े हो जाओ और उसमें एक लक्ष्य बनाकर, उसकी तरफ टकटकी लगाकर, देखना आरम्भ करो। हाथ लम्बे करके उसकी तरफ बहुत देर तक खड़े रहो और मनमें यह दृढ़ विचार करो कि, तुम्हारी आकर्षण-शक्ति ( क़ुव्वते मक़नातीस ) घड़े में भरी जा रही है और घड़ा तुम्हारे पास आरहा है। यदि अच्छी मिहनत करोगे, तो निस्सन्देह एक सप्ताहमें घड़ा तुम्हारी आँखोंके सामने आ जायगा। उस समय बड़े ज़ोर से घड़े के एक मुक्का मारो। कुछ दिनों में घड़ा चकनाचूर हो जायगा।

इस समय यह अद्भुत और सरल साधन करो। एक चौकी पर बाजार से एक पक्का मिट्टी का घडा लाकर रक्खो। एक बन्द और सुनसान मकान में घडे पर इस प्रकार हाथ रक्खो कि, दायें हाथका अँगूठा बायें हाथके अँगूठे पर रहे और घडेपर बहुत जोर न पड़े, तब यह विचार करने लगो कि तुम्हारे हाथोंसे "शक्ति" निकलकर घड़े में भर रही है और उसको दायें से बायें की ओर फिरा रही है। नेत्रों को मूँद लो, यदि घरमें कोई हल्ला इत्यादि हो तो कानोंमें रूई दे लो। तुम्हारे दृढचित्त होते ही घड़ा पहले-पहल बहुत धीरे, फिर बहुत ज़ोर मे फिरेगा। फिर यह विचार करो कि, मेरी शक्ति इसको दाईं से बाईं ओर फेरे। घड़ेका उसी समय उस ओर फिरना आरम्भ होगा। यदि इस साधनको बढाओगे तो घडा पहले केवल हाथोंसे, फिर सोटीसे, फिर तागा बाँधे रह-नेसे, दूर बैठनेपर फिरता रहेगा—चाहे तुम कितनी भी दूर बैठे रहो। यदि एक वर्ष तक अच्छी मिहनत से इस साधनको करोगे, तो तुम बिना तागेके घड़ेको दूर रखकर फिरा सकोगे, चाहे उसपर एक आदमी भी क्यों न बैठा हो। फिर खुले मैदान हजारों के सामने चमत्कार बता सकोगे। कभी-कभी ऐसा होता है कि, शक्ति घडेमें बहुत भर जाती है और इसके कारण घड़ा फूट जाता है। मूर्ख मारे डरके भाग जाते हैं। जब इन सब साधनोंको अच्छे प्रकार से परिपक्व कर लोगे, तो आवाहनमें पहले ही दिन आत्मा ( मुक्त आत्मा ) आने लगे-

गी, परलोकका हाल मालूम होगा। चौकीको बीचमें रक्खो और तुम लोग उसके आस-पास बैठ जाओ। तुममेंसे जो मेस्मर योग्य होवे, वह मोडियमको बेहोश करे और आज्ञा दे कि, इस चौकीको हाथ लगाकर इसमें शक्ति भर दे। एक दो दिन में चौकी तैयार हो जायगी। इस चौकी पर पहले ही दिन मुक्त आत्मायें आने लगेंगी। इस तरह तुम हाथोंको रक्खो कि हर एक का हाथ दूसरे के हाथसे छूता रहे और प्रत्येक मनुष्य के दाये हाथ का अँगूठा दूसरे के बाये हाथ के अँगूठे पर रहे।

घरके भीतर सिवा एक मनोहर पदके बोलना मना है। एक अच्छा भजन गाओ। जब वह समाप्त हो जाय, तो अपने-अपने आसनो पर ठीक बैठ जाओ, क्योंकि फिर हिलना और नाक के द्वारा ज़ोर से स्वांस लेना मना है। कमरा पहले ही से सुगन्धित वस्तुओंसे मस्त रहता है, एकदम शान्ति आ जाती है। इस वक्त सबके सब यह विचार करो कि, हे ईश्वर! किसी अच्छी आत्मा को भेज, और इच्छा-शक्ति को जमाओ कि तिपाई में आत्मा आरही है और चौकी को हिला रही है। जब तिपाई हिलने लगी तो जान लो कि, आत्मा आगई है। तुम उससे इस प्रकार के प्रश्न करो कि यदि आत्मा आ गई है, तो तिपाई के अमुक पायेको इतने बार हिलावे। यदि हिन्दूकी है तो तीन बार, मुसल्मान की है तो चार बार इत्यादि। इसी प्रकार यह कहो कि, यदि आत्मा आ गई है तो किसी में

प्रवेश कर कर जावे। कभी-कभी आते ही वह तुम्हारे मीडियम को वेसुध कर देगी। उससे जो-जो प्रश्न पूछोगे, उत्तर ठीक पाओगे। कभी-कभी लिखित उत्तर भी मिलते हैं। यदि करोगे, तो ईश्वर की अद्‌भुत महिमा का परिचय मिलेगा। एकदम से आँखें खुल जायँगी। संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो इसके सामने असम्भव हो। हमारे दूर-पासके मित्रो व पाठकों! तुम्हें सौगन्ध है कि, इसे वा ऐसे किसी साधनको न करो।

नोट—यदि तिपाई तुम्हारे पास तय्यार नहीं है, तो योगाश्रम से ३) में मँगा सकते हो।

## मृत्यु की खबर।

पहले समय की बात नहीं है, आज भी बहुत से महात्मा पुरुष अपनी मौत की सूचना पहले ही से देदेते हैं। जिन का मन शुद्ध है, ऐसे हजारों मनुष्य मृत्यु के कुछ घण्टे पहले ही कह देते हैं, कि आज हम को अमुक समय शरीर छोड़ना है और ठीक उसी समय शरीर छोड़ देते हैं। परन्तु २ साल, ६ महीने या ८ वर्ष पहिले बतला देना कि इस समय, इस तिथि को मैं मर जाऊँगा,—एक चमत्कारक बात है, अभ्यास और महात्मापने का काम है। यह कार्य छायापुरुषके साधन से सिद्ध हो जाता है।
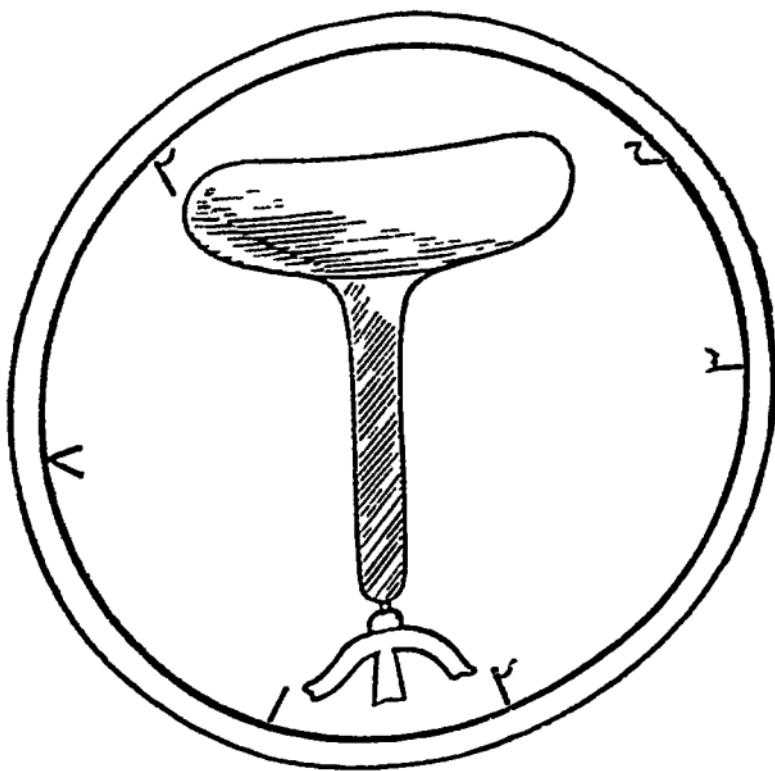
द्वितीय खण्ड

# द्वितीय खण्ड

## स्वरोदय शास्त्र

## स्वरोदय।

स्वर + उदय = स्वरोदय। स्वरके नियम-पूर्वक चलाने की विद्याको स्वरोदय कहते हैं। यह अत्यन्त प्राचीन और प्रतिष्ठित विज्ञान है। संसार की विद्याओं का यह केन्द्र है। जिन प्रश्नों का बड़े-बड़े तत्त्वज्ञ और भिन्न-भिन्न धर्म यथोचित उत्तर नहीं दे सकते, उनका यह शीघ्र ही समाधान कर सकता है। हिन्दू-शास्त्रके अनुसार संसार पाँच तत्त्वों से बना है। अर्थात् मूल तत्व पाँच तत्त्वोंमें बँटनेके पश्चात् सृष्टि की उत्पत्तिका कारण हुआ है। इनसेही पाँच तत्वो का भली भाँति ज्ञान होने से मनुष्य सृष्टिके रहस्यको समझ सकता है। श्रीमहादेवजीने इस विद्या

का वर्णन पार्वती से किया। जिस प्रकार हिन्दूशास्त्रके अन्त-र्गत अनेक मतमतान्तरों एवं भिन्न-भिन्न विद्याओंके कर्त्ता—महादेवजी माने गये हैं, उसी प्रकार स्वरोदय-शास्त्रका प्रथम ज्ञान भी शिव-पार्वती सम्वादके नामसे "शिव-स्वरोदय" में वर्णित है। ३०० वर्ष पूर्व इसके प्रख्यात ज्ञाता श्रीचरणदासजीने हिन्दी-भाषामें इसको कविताका रूप प्रदान किया। कहते हैं कि, श्री व्यास-पुत्र शुकदेवजीने स्वयं चरणदासजीको इसका ज्ञान कराया था।

इस समय यह विद्या गुप्त होरही है। लोगोंका विश्वास इसमे हट रहा है। परन्तु तब भी जो लोग इससे ज़रा भी परिचित हैं, वे इसके रहस्यको खूब जानते है। उनकी श्रद्धाको किसी प्रकारका तर्क खण्डित नहीं कर सकता। चरणदासजी का कथन है :—

*सब योगन को योग है, सब ज्ञानन को ज्ञान।*
*सर्व सिद्धि को सिद्धि है, तत्व सुरन को ध्यान॥*

इस विद्या को जानने वाले तीनों कालोंका हाल बता सकते है। जो इस विद्या से खूब परिचित हैं, वे अपनी मृत्यु अथवा बीमारी का पहले से ही हाल मालूम कर लेते हैं। इसके अनुसार जो कार्य किया जाता है, वह कभी विफल नहीं होता।

*धरनि टरै गिरिवर टरै, टरै जगत् सुन मीत।*
*ज स्वरोदय ना टरै, कह मुरलीसुत रणजीत॥*

# पहला परिच्छेद।

## स्वरोंका वर्णन

स्वर तीन हैं। दहिना (पिङ्गल स्वर), बांयाँ (इड़ा स्वर) और सुषम्ना। इड़ा, पिङ्गला, सुषम्ना—तीन नाड़ियाँ और इन्हींके नामसे तीन प्रकारके स्वर प्रसिद्ध है। इड़ा शरीरके बाईं ओर फैली हुई है; इसे चन्द्र-नाड़ी भी कहते हैं। पिङ्गला शरीर के दाईं ओर है; इसे सूर्यनाड़ी कहते हैं। सुषम्ना नाड़ी शरीरके बीचो-बीच है। सूर्य-चक्र इसी के आधार पर स्थित है।

स्वास कभी दाहिने नथने से ज़ियादा ज़ोरसे निकलता है, कभी बायें से और कभी दोनो नासिकाओ से बराबर निकलता है। यदि स्वर बायीं नासिकासे ज़ियादा आवे, तो उसे इड़ा स्वर या चन्द्र-स्वर कहते हैं। यदि स्वास दाहिनी नासिकासे अधिक आवे, तो उसे पिङ्गला स्वर या सूर्य-स्वर कहते है। यदि स्वास दोनो नासिकाओंसे बराबर निकलता है, तो उसे सुषम्णा स्वर कहते हैं।

*इड़ा पिंगला सुष्मुणा—नाड़ी तीन विचार।*
*दहिने बायें स्वर चलें—लखें धारना धार॥*

इस विद्यामें चन्द्रमा को अधिष्ठात्री माना गया है। सब प्रकारकी गणना यहीं से की जाती है। शुक्लपक्षसे सब कार्यारम्भ होता है।

*शुक्ल पक्ष के आदि ही, तीन तिथि लग चन्द।*
*फिर सूरज फिर चन्द है, फिर सूरज फिर चन्द॥*
*कृष्ण पक्ष के आदि में, तीन तिथि लग भान।*
*फिर चन्दा फिर भान है, फिर चन्दा फिर भान॥*

शुक्लपक्ष अर्थात् चाँदनी रातकी पहली तिथिको नीरोगी मनुष्य का, सूर्योदयके समय, चन्द्र-स्वर चलता रहेगा। इसी प्रकार लगातार तीन दिन तक ऐसा होगा। यह दशा पाँच घड़ी तक रहती है, बादमें स्वर बदल जाता है।

कृष्णपक्षमें लगातार तीन दिन तक अर्थात् प्रथमा, द्वितीया और तृतीया को सूर्योदयके समय सूर्यस्वर चलेगा।

तीन दिन के बाद सवेरे स्वर बदल जाया करता है। नीचेके नक्शे से यह बात भली भांति समझमें आजावेगी।

प्रात:कालका समय सूर्योदयसे लेकर ५ घड़ी तक।

| | दाहिना (सूर्य्य) | बाँया (चन्द्र) |
|---|---|---|
| कृष्णपक्ष | १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५. | ४, ५, ६, १०, ११, १२, |
| शुक्लपक्ष | ४, ५, ६, १०, ११, १२, | १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५, |

पाँच घड़ी समाप्त होने पर स्वर आपसे आप बदल जाता है, यह दशा केवल स्वस्थ मनुष्यो को होती है। यदि शरीरमें कुछ गड़बड है, तो नि:सन्देह स्वरमें फ़र्क पड़ जावेगा। यदि पक्षके आरम्भमें, लगातार ३ दिन तक, स्वर उलटा चले तो प्राय: १५ रोज़ तक शरीरमें एक न एक नयी व्याधि सताया करती है। यदि कोई मनुष्य केवल स्वर ठीक कर सके, तो कम से कम बहुत कम बीमार रहेगा और यदि बीमारी रहेगी तो बहुत ज़ियादा ज़ोर न करेगी।

# दूसरा परिच्छेद ।

## पंच तत्वों का वर्णन ।

आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल,—ये पाँच तत्व हैं। हरेक नासिका—नथने—से एक स्वर पाँच घड़ी तक चलता है, फिर दूसरी नासिका—नथने—से चलने लगता है। जब स्वर चलता है, तो उसमें तत्व भी एक-एक घड़ीके हिसाब से चलते हैं। सबसे पहली घड़ीमें वायु-तत्व चलता है—फिर क्रमानुसार अग्नि, पृथ्वी, और जल-तत्व चला करते हैं। वायु-तत्व इस प्रकार नहीं चलता। वह हरेक तत्वके साथ थोड़ी-थोड़ी देर चलकर, अपनी एक घड़ी पाँच घड़ीमेंसे ले लेता है। इस तरह कुल २४ घण्टोंमें, अर्थात् ६० घड़ीमें, पाँच तत्व बारह बार बदलते हैं। यह तो हुई दशा अलग-अलग तत्वोंकी। इन पाँचों तत्वोंके मेल से (Permutations & Combinations हरेक के पाँच भाग हो जाते हैं। उदाहरणके लिए वायु-तत्व लीजिए :—

प्रथम, वायुमें वायु।
द्वितीय, वायुमें अग्नि॥
तीसरे, वायुमें पृथ्वी।
चौथे, वायुमें जल।
पांचवें, वायुमें आकाश।

यह बात गणितसे भली भाँति मालूम हो सकती है। परन्तु स्वरोदय के अभ्यासी को गणित करनेको कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रत्येक तत्त्व का रंग उसको हर वक्त दिखता रहता है। प्रत्येक तत्त्व के रंग-स्वाद-रूप-चाल आदिका नक्शा नीचे दिया जाता है।

| | नामतत्त्व | रङ्ग | स्वाद | स्वरूप | स्वभाव | चाल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | आकाश | काला | कडुआ | कानके समान | शीतल | १ अंगुल--अन्दर ही अन्दर चलता है |
| २ | वायु | हरा | खट्टा | गोल | चञ्चल | ८ „ तिरछा „ |
| ३ | अग्नि | लाल | चर्चरा | त्रिकोन | गरम | ४ „ ऊपर „ |
| ४ | पृथ्वी | पीला | मीठा | चौकोन | भारी | १२ „ सम्मुख „ |
| ५ | जल | सफेद | मीठा से ज़रा कम | चंद्राकार | शीतल | १६ „ नीचे „ |

स्वर पहचानने की साधारण रीति तो यह है कि, साधक

शान्त रीतिसे बैठकर श्वास लेवे। नासिकाके पास हाथ लगाकर देखे कि, श्वास कहाँ तक नीचे जाता है—उसे माप ले। साधारणतः तत्त्व मालूम हो ही जावेगा। यदि नासिकाके अन्दर ही अन्दर श्वास रहे, तो आकाश-तत्व जानो। ४ अंगुल बाहर आवे तो अग्नि-तत्त्व—८ अंगुल बाहर आवे तो वायु-तत्त्व; १२ अंगुल बाहर आवे तो पृथ्वी-तत्त्व,—१६ अंगुल बाहर आवे, तो जल-तत्त्व समझना चाहिए।

इसकी एक दूसरी विधि भी है। एक आइना या दर्पणको साफ़ करके उसपर ज़ोर से श्वांस मारो, ताकि दर्पण श्वासकी भाफ से धुँधला हो जाय, फिर देखो कि इस धुँधलेपनका क्या स्वरूप होता है।

यदि चार कोने बराबर हैं तो पृथ्वी-तत्त्व जानो, अर्द्ध चन्द्राकार है तो जल-तत्त्व, यदि आकृति गोल हो तो वायु-तत्त्व चलता जानो। यदि आकृति त्रिकोण है, तो अग्नि-तत्त्व चलता जानो और यदि आकृति कान (कर्ण)की हो तो आकाश-तत्त्व चलता जानो

पृथ्वी तत्त्व
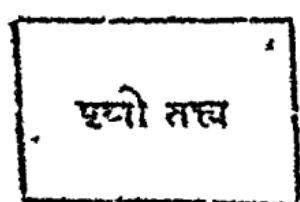
जल तत्त्व

वायु तत्त्व

आकाश तत्त्व

तत्त्व पहचाननेकी एक सरल विधि और भी है। पाँच गोली पाँच तत्त्वोंके रंगकी बनवालें। सदा उनको अपने जेब में रक्खे। जब कभी आपको इच्छा यह जानने को हो कि, कौनसा तत्त्व चल रहा है, तो आँखें बन्द करके और मनको एकाग्र करके जेब मेंसे एक गोली निकाल लें। बहुधा उसी रंगकी गोली निकलेगी, जिस रङ्ग का तत्त्व उस समय चल रहा होगा। यदि नेत्र बन्द कर लिये जावें, तो अँधेरेमें जो रंग दिखाई देता है—उसको ध्यान-पूर्वक देखनेसे भी तत्त्व की पहचान हो सकती है। परीक्षाके लिए अपने किसी मित्र से कहें कि, कोई रंग वह अपने मनमें ले ले। अब तुम यह पता लगाओ कि, तुम्हारा कौनसा तत्त्व चल रहा है। जो तत्त्व चल रहा होगा, वही रंग उसने अपने मनमें लिया होगा। पहले-पहल गलती अवश्य होगी, परन्तु अभ्याससे ठीक रङ्गका पता लग जावेगा। अभ्याससे यह बतलाना, कि अमुक मनुष्यने आज क्या खाया है, मामूली बात हो जाती है।

## तीसरा परिच्छेद ।

### स्वरोंका वर्णन ।

स्वरों का सम्बन्ध राशि, नक्षत्र और दिन तीनों से है। प्रश्न पूछनेके समय यह बहुत काम आता है। इड़ा स्वरका स्वामी चन्द्रमा है—यह स्थिर है। पिङ्गला स्वर का स्वामी सूर्य है—यह चर है। सुषुम्णा—चर और स्थिर दोनों स्वभाव अपनेमें रखता है। इड़ा शीतल, पिङ्गला गर्म और सुषुम्णा सम-शीतल है। इड़ा का स्वामी कई हिन्दू-ग्रन्थकारोंने ब्रह्मा, पिंगलाका शिव और सुषुम्णा का विष्णु लिखा है। सोमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, और शुक्रवार चन्द्र-स्वरके दिन हैं। शनि रवि और मङ्गल,—ये सूर्य-स्वरके दिन हैं।

*मंगल अरु इतवार दिन, और शनिश्चर तीन।*
*शुभ कारज को मिलत हैं, सूरज के दिन तीन॥*

*सोमवार शुक्र भलो, दिन वृहस्पति को देख।*
*चन्द्र योग में सफल हैं, चरणदास कह शेष॥*

इड़ा स्वर या चन्द्र स्वर की दिशाएँ हैं—दक्षिण और पश्चिम पिंगला स्वर या सूर्य स्वर की दिशायें हैं—पूर्व और उत्तर।

इड़ा स्वर की लग्न हैं—वृष-सिंघ-वृश्चिक-कुम्भ। पिङ्गला स्वर की—मेष-कर्क-तुला-मकर और सुषुम्णा स्वर की—मिथुन, कन्या, धन और मीन हैं।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| सूर्य स्वर | मेष | कर्क | तुला | मकर |
| चन्द्र " | वृष | सिंह | वृश्चिक | कुंभ |
| सुषुम्णा " | मिथुन | कन्या | धन | मीन |

*कर्क मेष तुला मकर, चारों चरती राश।*
*सूरज सो चारों मिलत, चरकारज प्रकाश॥*
*मीन मिथुन कन्या कही, चौथी औ धन मीन।*
*द्विस्वभाव की सुषुमणा, मुरली-सुत रणजीत॥*
*वृश्चिक सिंह वृष कुम्भ युत, बायें स्वर के संग।*
*चन्द्र योग को मिलत हैं, थिर कारज परसंग॥*

## नक्षत्र

इड़ा स्वर के नक्षत्र ये हैं,—

अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुणी, उत्तराफाल्गुणी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ ।

पिंगला स्वरके नक्षत्र ये है,—

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, उत्तराषाढ, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, रोहिणी ।

सुषुम्णा स्वर के नक्षत्र ये हैं :—

मृगशिरा, आरद्रा, पुनर्वसु, पुष्य ।

| नामस्वर | पिंगला | इडा | सुषम्णा |
|---|---|---|---|
| प्रसिद्धनाम | सूर्य | चन्द्र | दोनो |
| स्वभाव | चर | स्थिर | द्विस्वभाव |
| प्रभाव | गर्म | शीतल | द्विस्वभाव |
| देवता | शिव | ब्रह्मा | विष्णु |
| पक्ष | कृष्ण | शुक्ल | |
| दिन | शनि, रवि, मंगल | बु० वृ० शु० सोम | |
| दिशा | पूर्व, उत्तर | दक्षिण, पश्चिम | |
| तत्त्व | अग्नि, वायु | जल, पृथ्वी, आकाश | |
| शरीर के अनुसार दिशा | नीचे, पीछे, दाहिने | ऊपर, बाँयें, सामने | |
| लग्न | मेष, कर्क, तुला, मकर | वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ | मिथुन, कन्या, मीन, धन |
| नक्षत्र | उत्तराषाढ़, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, रेवती, रोहिणी | उ०फाल्गुणी हस्त, चित्रा, स्वाती, विषाखा ज्येष्ठा, मूलपूर्वाषाढ़ अनुराधा | मृगशिरा आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य |
| संख्या | १, ३, ५, ७, ९, ११, इत्यादि | २, ४, ६, ८, १०, १२, इत्यादि | |

# स्वरों में अच्छे काम करने का वर्णन ।

## चन्द्र—स्वर ।

चन्द्र-स्वरमें वे काम करने चाहिएँ जो स्थायी हों और जिनमें कुछ परिश्रम और प्रबन्धकी आवश्यकता हो। जैसे,—मकान बनाना, बाग लगाना, कुँआ खुदवाना, तालाब बनवाना, दूर-देशोंकी यात्रा करना, नये आश्रममें प्रवेश करना, मकान बदलना, विवाह करना, आभूषण पहनना, सामान इकट्ठा करना, दान देना, औषध खाना, हाकिमसे मिलने जाना, व्यापार करना, मित्रोंसे मिलना, धार्म्मिक विवाद करना, सवारी—हाथी घोड़े मोल लेना, दूसरेकी भलाईके काम, बैङ्कमें या किसी साहूकारके यहाँ रुपया जमा करना, गाना-नाचना-बाजा बजाना, एक स्थानसे दूसरे स्थान पर रहने जाना, पानी पीना, पेशाब करना, धन एकत्र करना, बीज बोना, विद्यारम्भ करना, घर की नींव रखना, गाँव खरीदना, दूकान खोलना, किसी की सिफारिश करना, किसी देश पर अधिकार करना, दक्षिण या पश्चिम की यात्रा करना, प्रेम करना, प्रार्थना करना, राज पर बैठना, नौकरी पर पहले दिन जाना इत्यादि इत्यादि ।

साथ ही तत्त्वका ख़याल भी रहे। यदि चन्द्र स्वरमें जल या पृथ्वी-तत्त्व चलता हो, तो काम जल्दी तथा पूरा हो ।

## सूर्य्य-स्वर ।

सूर्य-स्वरमें इनसे भी कठिन कार्यारम्भ करने चाहिएँ। जैसे:—कठिन विषयोंका पढ़ना, जहाज़ आदि पर बैठना, शिकार खेलना, ऊँचे स्थान या सवारी पर चढ़ना, लिखना, लेनदेन,कुश्ती लड़ना,सोना, जूआ खेलना, समुद्र-यात्रा करना, नहाना, भोजन करना, शौचादि को जाना—टट्टी जाना, युद्ध करना, शस्त्रविद्या सीखना, बीमारी का इलाज करना, स्वरोदयका साधन करना, शत्रुपर चढ़ाई करना या उसके घर पर जाना, किसी स्थान को गिरा देना, पूर्व और उत्तर की यात्रा करना, क़र्ज़ा देना या लेना इत्यादि इत्यादि ।

## सुषुम्णा-स्वर ।

सुषुम्णा स्वरके चलते समय कोई संसारी कार्य नहीं करना चाहिए। यदि कोई कार्य किया जावे, तो वह कभी भी ठीक न होगा। इस समय हरिकीर्त्तन, योगाभ्यास, सोऽहम का जाप इत्यादि करना चाहिए। इस समय का किया हुआ योगसाधन बहुत अधिक प्रभाव रखता है। इस का मुख्य कारण यह है कि, सुषुम्णा स्वर चलते समय शरीरकी सब नाड़ियां और सब चक्र कुछ विकसित हो जाते हैं। सूर्य्य-चक्र की ग्रन्थि भी अभ्यासमें दिखने लगती है।

इसी प्रकार यह भी ध्यान रहे कि, तत्व का प्रभाव स्वरसे अधिक पड़ता है। पृथ्वी-तत्त्वमें वे काम करने चाहिएँ, जो कि

परिश्रम और दृढ़ता चाहते हैं। जल-तत्त्वमें जल्दीके काम करने चाहिएँ। अग्नि-तत्त्वमें अत्यन्त क्लिष्ट और मिहनतके काम करने चाहिएँ। वायु-तत्त्व और आकाश-तत्त्वके काम प्रायः निष्फल होते हैं। वायु तत्त्वमें शत्रुको हानि पहुँचा सकते हैं और आकाश तत्त्वमें योग-साधन कर सकते हैं।

## स्वरों का नियमित पालन ।

स्वरोंके नियमित पालनसे शारीरिक और मानसिक दोनों उन्नति हो सकती हैं। प्रातःकाल उठकर यह देखे कि, आज कौन दिन है, पक्ष कौनसा है, तिथि कौनसी है। कृष्णपक्षमें तीन तिथियों तक दाहिना स्वर प्रातःकाल पाँच घड़ी तक चलता है, बाद में बायाँ हो जाता है। यदि दिन, तिथि और पक्ष समान हों, तो दिन अच्छी तरहसे बीतेगा। कोई भी दुर्घटना नहीं होगी। तीन दिन तक लगातार नियमपूर्व्वक स्वर और तत्त्वोंके चलने से पक्ष बहुत अच्छा बीतता है।

इस शास्त्रके आचार्य्योंने अपने अनुभवसे बतलाया है कि, यदि सूर्य्यके स्थानमें चन्द्रमा को चाल हो तो,पहले दो घण्टोंमें चिन्ता और शोकयुक्त घटना होवे; दूसरे दो घण्टोंमें धन की हानि; तीसरेमें यात्रा, चौथे में हानि, पाँचवें में पदच्युत होना, छठें में रञ्ज, सातवें में बीमारीसे कष्ट; आठवें में

पीड़ा या मृत्यु। यदि प्रातःकाल चन्द्र-स्वर और सायंकाल सूर्य्य-स्वर चले तो निराशासे आशाका प्रादुर्भाव होवे। इसके विपरीत—निराशा व कष्ट हो। यदि किसी प्रकार का दुःख या सन्ताप हृदयको पीड़ा देरहा हो, तो चन्द्र स्वर चलावे इससे प्रशंसा हो जावेगी।

*दिन को तो चन्दा चले, चले रात को सूर।*
*यह निश्चय कर जानिए, प्राणगमन है दूर॥*

अर्थात्—दिनको चन्द्र-स्वर चलावे और रातको सूर्य-स्वर—जो ऐसा साधन करता है, उसको असामयिक मृत्यु नहीं होती। केवल भोजन करते समय बराबर आध घण्टे तक सूर्य-स्वर चलावे और रात्रिको पानी पीते वक्त पन्द्रह मिनट तक चन्द्र स्वर रक्खे।

*सूक्ष्म भोजन कीजिए, रहिए ना पड़ सोय।*
*जल थोड़ा सा पीजिए, बहुत बोल मत खोय॥*

भोजनके उपरान्त पहले आठ स्वांस सीधे अर्थात् चित्त लेटकर ले, पुन' १६ स्वास दाहिने करवट होकर ले, पुनः ३२ स्वांस बायें करवट होकर ले। इस तरह करनेसे बहुत-सी बीमारियाँ भाग जाती हैं।

यदि किसी मनुष्यने ज़हर खा लिया है, तो चाहिए कि चन्द्र-स्वर और जल-तत्त्व शीघ्रही चलादे। ज़हर का कुछ

असर न हो सकेगा। यदि पृथ्वी और जल-तत्त्व अधिक चलें, तो द्रव्य मिले और स्वास्थ्य अच्छा रहे। यदि वायु-तत्त्व चले तो विपत्ति, ज़ेरबारी, अग्निसे मृत्यु, आकाशसे हानि होती है।

यदि चन्द्रमा-स्वर हो और पृथ्वी या जल-तत्त्व अधिक चले, तो स्वास्थ्य अच्छा रहे और द्रव्यकी प्राप्ति हो। यदि बहुत से लोग एकत्र बैठे हों और वायु तत्त्व एकाएकी चलने लगे, तो समझलो कि कोई मनुष्य जाना चाहता है। कह दो, जो जाना चाहता है वह सहर्ष जा सकता है।

| नाम नाड़ी व प्रकृति | नाम नाड़ी जिसमें स्वर बहता है व प्रकृति व पक्ष जिस नाड़ी का है | नाम दिन जो स्वरसे सम्बन्ध रखते हों |
|---|---|---|
| इड़ा (स्थिरकार्य्य) | इड़ा व चन्द्रमा बाएँ स्वर का नाम है। प्रकृति शीतल है। शुक्ल पक्षमें १५ दिन इसकी प्रधानता है। सवा घण्टे तक एक-एक नाड़ी का प्रमाण है। क्रमसे इसमें पाँचों तत्त्व बहते हैं। | बुधवार बृहस्पतिवार शुक्रवार सोमवार |
| पिङ्गला (चरकार्य) | पिंगला व सूर्य, दाहिने स्वर का नाम है। कृष्ण पक्षमें १५ दिन इसकी प्रधानता है | रविवार शनिवार मंगलवार |
| सुषुम्णा द्विस्वभाव | — | |

योगाभ्यास. हरि

| नाम तत्त्व | रंग | चाल | तत्त्वका स्वाद |
|---|---|---|---|
| आकाश | काला | दोनो नासिकाओ के भीतर | बुरा फीका |
| अग्नि | लाल | ४ अँगुल नासिका के बाहर आवे, ऊपर होकर। | चरपरा |
| वायु | हरा | ८ अँगुल तिरछा चले | खट्टा |
| पृथ्वी | पीला | १२ अँगुल नासिका के बाहर, | मीठा |
| जल | श्वेत | १६ अँगुल | कम [illegible] |

## पञ्च कर्मेन्द्रिय ( नक़्शा ५ )

| वाक्य | हस्त | पाद | लिङ्ग | गुदा |
|---|---|---|---|---|
| अग्नि | इन्द्र | उपेन्द्र | प्रजापति | यम |
| बोलना | लेना देना | चलना | रति भोग | मल त्याग |
| आकाश | पवन | अग्नि | जल | पृथ्वी |

## चौथा परिच्छेद।

### स्वरोदय शास्त्र और आरोग्यता।

इस विद्याका अभ्यासी बहुत ही स्वस्थ रह सकता है। वह दूसरोंकी बीमारी भी दूर कर सकता है। तत्त्व और स्वर इनके विपरीत चलनेसे ही बीमारी होती है और बीमारी होनेसे ये विपरीत चलने लगते हैं। यदि तत्त्व और स्वर समय पर चलें तो कोई बीमारी नहीं हो सकती। यदि जरा भी भेद मालूम हो, तो जान लो कि बीमारी का प्रवेश होगया है। उसी समय स्वर को ठीक करनेका प्रयत्न करो। इससे एकदम तो बीमारी नष्ट न हो जावेगी, परन्तु कम अवश्य होगी। साधारण बीमारी तो इसीसे दूर हो जावेगी। यदि स्वर व तत्त्व ठीक चल रहे है तो उनको कभी भी नहीं बदलना चाहिए। स्वरोंमें चन्द्रस्वर और तत्त्वोंमें जल और पृथ्वी स्वास्थ के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुए हैं। आकाश-तत्त्व मृत्युकारी है। अग्नि और वायुका भी जहाँ प्रवाह अधिक होगा, वहाँ बीमारी अधिक होगी।

सूर्य्य-स्वर गर्म और चन्द्र-स्वर ठण्ढा है। इसलिये यदि

कोई बीमारी शनिके कारण है, तो उसके लिये सूर्यस्वर लाभदायक है। इसी प्रकार गर्मीके कारण जो-जो बीमारियाँ होती हैं, उनके लिए चन्द्रस्वर लाभदायक है। साथ-साथ तत्वों का भी ध्यान रक्खा जावे।

## स्वर बदलने की विधि।

पहली विधि—जो स्वर चलाना चाहो, उसके विपरीत करवट बदल कर लेट जाओ। थोड़ी देरमें स्वर बदल जावेगा। उदाहरणार्थ, यदि सूर्य्यस्वर चल रहा है और चन्द्र चलाना है, तो दाहिनी करवट लेट जाओ।

दूसरी विधि—पुरानी रुई को बत्ती बनाकर नासिकामें लगादो। जो स्वर चलाना हो, उसे ही खुला रक्खो।

तीसरी विधि—लेटकर तीसरी पसलीके पास तकिया दबादो। बहुत शीघ्र स्वर बदल जाता है।

चौथी विधि—एकाएक दौड़ने से या परिश्रम या कसरत करनेसे भी स्वर बदल जाता है।

बीमारको भी इसी नियम का पाबन्द बनावे। बहुत शीघ्र औषधिका सुपरिणाम मालूम होगा और बीमारी भाग जायेगी।

# पाँचवाँ परिच्छेद।

## गर्भाधान-विधि।

इस विषयमें इस विद्या का अभ्यासी अपने और दूसरोंके लिए बहुत कुछ कर सकता है।, हजारों मनुष्य चाहते है कि वे सन्तानका मुख देख सकें। हज़ारों पूजा-पाठ बैठाते है। कोई कोई तो इसी धुनमें अपनी प्रतिष्ठा भी खो देते है, और धन भी गँवाते है; परन्तु उनको आशातीत सफलता नहीं होती, किन्तु इसका अभ्यासी इस विषयमें बहुत कुछ कर सकता है।

स्त्री-सम्भोग केवल रात्रिके समय—जबकि भोजन अच्छी तरहसे पच जावे—होना चाहिए। दोनों हर तरहसे प्रसन्न-चित्त हों। दूसरे किसी समयमें स्त्री का संसर्ग ही नहीं होना चाहिए। प्रातःकालके सम्भोगसे शक्ति व्यर्थ ही नष्ट होती है। संभोगके समय पुरुष का स्वर सदा सूर्य चलना चाहिए। चन्द्रस्वरमें गर्भ रहना असम्भव है। सूर्यस्वरके साथ तत्त्वका भी ख़याल रहे।

जल पृथ्वी के योग में, गर्भ रहे सो पूत ।
वायु तत्व में छोकड़ी, और सूतके सूत ॥
पृथ्वी तत्व में गर्भ जो, बालक होवे भूप ।
धन्वन्ता सोई जानिए, सुन्दर होए स्वरूप ॥

जल और पृथ्वी-तत्त्वमें यदि गर्भ रह जावे, तो लड़का होता है—वह भाग्यवान् तथा सदाचारी होता है। यदि वायु-तत्त्वमें स्वर चले तो लड़की होती है। आकाश-तत्त्वमें गर्भ रहते ही यदि लड़का पैदा होवे, तो उसकी माता की मृत्यु हो जावे। इस तत्त्वमें एक तो गर्भ ही बहुत कम रह सकता है। अग्नि-तत्त्वमें गर्भ रहता नहीं, यदि रहा तो गर्भपातका और स्त्रीके मरनेका भय रहता है। सूर्य्यस्वरमें लड़का और चन्द्रस्वरमें लड़की पैदा होती है। गर्भ उसी समय रहता है, जबकि स्त्री का चन्द्रस्वर चलता हो और मर्द का दाहिना ( सूर्य ) स्वर। यह सबसे अच्छा समय है। तत्त्व साथमें पृथ्वी या जल होवे। यदि स्त्री बांझ है या और कोई ख़राबी है, तो लिखा है कि यदि पुरुष अपनी दाहिना स्वर करे और स्त्री का वायां और दोनों का तत्त्व जल हो तो, बाँझ को भी गर्भ रह सकता है।

स्वर इच्छानुसार बदल सकता है। तत्त्व इच्छा और आत्मशक्तिसे बदल सकता है। अभ्यासीके लिए, जिसने स्वरको और तत्त्वोंको वशीभूत किया है, यह अति साधारण बात है।

वह अपने और दूसरेके ऊपर जो चाहे स्वर और तत्त्व बदल सकता है। ज्योंही तत्त्व का ध्यान किया कि, वह बदल जाता है।

इस सम्बन्धमें हिन्दुस्थानके प्राचीन आचार्य्यों ने और बहुत-सी बातें बतलाई है, परन्तु उनका सम्बन्ध स्वरोदयसे नहीं है। परन्तु कुछ एक ऐसी आवश्यक बातें हैं, जिनसे अभ्यासी को बहुत कुछ सरलता होगी।

यदि शुक्लपक्षमें गर्भ रहे तो लड़की हो, नहीं तो लड़का। कृष्णपक्षमें लड़की होती है।

यदि २-४-६-८-१२-१४-१६ इत्यादि दिन संभोग किया जावे, तो लड़का और यदि १-३-५-७-९-११-१३-१५ दिनों अर्थात् तिथियों में संभोग किया जावे, तो लड़की होती है।

यदि पुरुष स्त्री की अपेक्षा बलवान् है तो लड़का होगा— अन्यथा लड़की। चाहिए कि इन सब बातों को मिलाकर काम लिया जावे, तो इच्छानुसार लड़का लड़की उत्पन्न हो सकते हैं।

## यात्रा

दाहिने स्वर में जाइये, पूरब उत्तर राज।
सुख सम्पति आनन्द करे, सभी होएँ शुभ काज॥
बाँयें स्वर में जाइए, दक्षिण पश्चिम देश।
सुख आनन्द मंगल करे, जाए परदेश॥

यदि उत्तर और पूर्व को यात्रा करनी है, तो दाहिने स्वरमें प्रस्थान करे। यदि पश्चिम और दक्षिण को यात्रा करनी है, तो बाँयें स्वरमें चले। इसके विपरीत चलनेसे हर प्रकारकी हानि उठानी पड़ती है, यात्री घर भी वापिस नहीं आने पाता। कभी-कभी अकाल मृत्यु हो जाती है। लेखक को स्वयं अनुभव है, जबकि वह प्रयागसे छिन्दवाड़ेके लिए रवाना हुआ था, रात्रिका समय था। शामसे ही यह समस्या उपस्थित थी कि, रेलका समय रात्रिका है। यात्रा विशेष कार्यके लिए है। एक आत्मीय की बीमारी का हाल सुनकर जाना है। उस समय उसके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब रात्रिको असमय ही चन्द्रमा स्वर और पृथ्वी तत्त्व चलने लगी। दक्षिण यात्रामें यह बहुत ही शुभ घड़ी गिनी जाती है। उसने इसका वर्णन उसी समय किया। छिन्दवाड़ा पहुँचने पर सब कुशल पाया। स्वरोदय-शास्त्र इस प्रकारसे भावी घटनाओंका पता बतलाता है और अनिश्चित भविष्य का एवं प्रकृतिके गुप्त भेदोंका पर्दा खोल देता है।

जल पृथ्वी तत्व में चले, सुनो कान दे वीर।
सुफल कारज दोनों करे, के धरती के नीर॥

पृथ्वी और जल-तत्त्व की यात्रा सहायक यात्रा कहलाती है। आकाश, वायु व अग्नि-तत्त्वमें जो यात्रा की जाती है उसमें बड़ी हानि होती है। एक आचार्य का कथन है कि

आकाश-तत्त्वमें यात्रा करे तो यात्रामें मृत्यु हो, या बीमारी हो। वायु-तत्त्व की यात्रा से बीमारी होती है। अग्नि-तत्त्व से किसी प्रकारका आघात होवे। निराशा और कार्यमें असफलता, इन तत्त्वों की यात्राके प्रधान लक्षण है। जब यात्राको चले तो देखे कि स्वास दाहिना है या बांया। यदि स्वास दाहिना चल रहा हो, तो तीन पग दहिने पैर पहले उठाकर चले—और एक क्षण ठहर कर वही पैर आगे रक्खे और चला जावे। इच्छित कार्य्य हो जावे। चन्द्रमामें बायें पैर को ४ बार पहले उठाना पड़ता है।

दाहिने स्वर में जाइए, दहिने डग धर तीन।
बाँये स्वर में चार डग, बायें कर प्रवीन॥

सुषुमणा-स्वरमें कभी भी यात्रा नहीं करनी चाहिए; अन्यथा हर प्रकार की हानि ही होती है।

गाँव परगने खेत पुनि, इधर उधर सुन मीत।
सुष्मुण चलत न चालिए, वर्जित है रणजीत॥

# छठा परिच्छेद।

## प्रश्नोत्तर विधि

इसका अभ्यासी भविष्यका वर्णन बहुत अच्छी तरहसे कर सकता है। यदि वह तत्त्व और स्वरों के साधनको पूरा कर चुका हो, तो प्रश्नोंका उत्तर अति उत्तमता से दे सकता है। जब कोई आकर प्रश्न पूछे तो देखो कि कौनसा स्वर चलता है और इस समय कौनसा तत्त्व चलता है। प्रश्नोत्तर करनेवालों को और स्वरोदय के प्रेमियोंको नीचे लिखे उपदेशों पर अवश्य रोज़ ध्यान रखना चाहिए।

(१) आज प्रातःकाल कौनसा स्वर चल रहा था? वह गलत तो नहीं है? अर्थात् वह विपरीत तो नहीं है? जिस तिथि या पक्षमें जो स्वर चलना चाहिए, वह ठीक है या नहीं?

(२) आज कौन तिथि है? पक्ष कौनसा है?

(३) कौन दिन है?

(४) नक्षत्र कौनसा है और कबतक है?

जब कोई प्रश्न करे तो इन नीचे लिखी हुई बातों का ध्यान रक्खे ;—

( १ ) प्रश्न करते समय कौनसा स्वर चल रहा है ?

( २ ) कौनसा तत्त्व चल रहा है ?

( ३ ) लग्न कौनसी है ?

( ४ ) प्रश्नकर्त्ताने किस दिशासे बैठकर प्रश्न किया है ?

( ५ ) कौनसा नक्षत्र है ?

( ६ ) कौनसी तिथि है ?

( ७ ) स्वर अन्दर को जारहा है या बाहरको अर्थात् प्रश्न करते समय सांस अन्दर लेरहे हो या निकाल रहे हो ?

( ८ ) प्रश्न कर्त्ताका कौनसा स्वर चल रहा है ?

( ९ ) कौन दिन है ?

जिस दिन अभ्यासी का स्वर ठीक न हो—अर्थात् तिथिके अनुकूल न हो, उस दिन या तो प्रातःकालमें उसे शुद्ध करले या उस दिन भर प्रश्नका काम न करे।

यदि इड़ा नाड़ी (चन्द्रनाड़ी) चल रही हो और प्रश्नकर्त्ताने नीचे से या पीछे से या दाहिने से पूछा हो, तो काम नहीं होगा। यदि स्वर पिङ्गला है और प्रश्न नीचे, पीछे या दाहिने से किया गया है, तो काम हो जायेगा।

*नीचे पीछे दाहिने स्वर सूरज को राज।*

यदि स्वर पिंगला है और प्रश्नकर्त्ताने प्रश्न ऊपर से या

सामने या बायीं ओर से किया है, तो काम न होगा। यदि स्वर डूबा है और प्रश्न ऊपर, सामने या बायें से किया गया है तो काम हो जावेगा।

यदि आकाश-तत्त्व में प्रश्न किया गया है, तो प्रश्न दिल्लगी का है। यदि वायु-तत्व में प्रश्न किया गया है, तो प्रश्न यात्रा-विषयक है। यदि अग्नि तत्त्व में प्रश्न किया गया हो, तो धातु-सम्बन्धी प्रश्न होगा, जैसे, रुपया पैसा इत्यादि। जलतत्वमें प्रश्न जीव के संबन्ध में है। पृथ्वीतत्त्व का प्रश्न 'मूल' विषयक होगा।

वायु-तत्व में प्रश्न यात्रा और कष्ट दूर करने के विषय में होगा। उत्तर दो कि फल मध्यम है।

अग्नि-तत्त्व में प्रश्न धन, लाभ, हानि इत्यादिका होगा। उत्तर दो कि सफलता होगी, परन्तु परिश्रम के बाद। पृथ्वी-तत्त्व में पृथ्वी के संबन्ध में प्रश्न होगा—खेती बाड़ी देश इत्यादि सम्बन्धी होगा। उत्तर दो कि कार्य्य उत्तमता से पूरा होगा, परन्तु देरी थोड़ीसी ज़रूर होगी। जल-तत्त्व में प्रश्न जन्म, मरण, जीव का आना, प्रेम इत्यादि के सम्बन्ध में होगा। उत्तर दो कि, मन-मानी सफलता प्राप्त होगी।

जल पृथ्वी के योग में, जो कोई पूछे बात।
शशी घर में सूरज चले, कहो कारज हो जात॥

*पावक और आकाश में, वायु कभी जो होय।*
*जो कोई पूछे आय कर, शुभ कारज नहिं होय॥*

जल पृथ्वी में दृढ़ता के काम किये जाते हैं। अग्नि, वायु दाहिने स्वरसें परकारज से सम्बन्ध रखते हैं। जिस दिशासे प्रश्नकर्त्ता बैठ कर पूछे, यदि वह स्वर चलता हो तो काम हो जावेगा, अन्यथा नहीं। यदि इड़ा स्वरमें प्रश्न किया गया है और तिथि इड़ाके अनुकूल है, तो काम बहुत अच्छी तरह हो जावेगा; अन्यथा कुछ विघ्न होगा।

दिन नक्षत्र यदि स्वरके अनुकूल हो तो काम शीघ्र ही हो जावेगा, अन्यथा—जितने अंश प्रतिकूल हैं उतनी ही देरी से या विघ्नों से काम होवेगा।

यदि वहते स्वरकी तरफसे, अर्थात् चलते स्वासके तरफ़ से, बन्द स्वर पर कोई आकर बैठ जाये, तो कह दो काम में विघ्न है।

जब स्वर भीतर को चले, कारज पूछे कोय।
पैज बाँध वासों कहो, मनसा पूरण होय॥

जब स्वर बाहर को चले, तब कोई पूछे तोय।
वाको ऐसो भासियो, नाहिं कारज विधि कोय॥

दहिने सेती आयकर, बाँये पूछे कोय।
जो बाँये स्वर बन्द है, सफल काज नहिं होय॥

बाँये सेती आयकर, दहिने पूछे धाय।
जो दहिनो स्वर बन्द है, कारज अफल बताय॥

यदि प्रश्नकर्त्ता और अभ्यासी के स्वर एक ही हों और सब बातें मिलती हो, तो काम हो जायगा। यदि स्वर और तत्त्व दोनो मिल जावें तो काम अवश्य हो जावे। उत्तर देते समय इन सब बातोंका ख़याल रखना चाहिए। खूब सोच समझ कर उत्तर देना चाहिए। कभी भी उत्तर झूठ न होगा।

## गर्भ सम्बन्धी प्रश्न।

प्रश्न—गर्भ है या नहीं?

उ०—यदि प्रश्न बन्द स्वर की ओर बैठ करे तो है—अन्यथा नहीं। काम होगा या नहीं, इस प्रकारके प्रश्नोंका निर्णय चलते स्वर से किया जाता है। परन्तु इसके प्रश्न बन्द स्वरसे लिए जाते हैं।

प्र०—इस गर्भ से लड़का होगा या लड़की?

उ०—अभ्यासी का बाँया स्वर है तो लड़की, दायाँ है तो लड़का पैदा होगा। यदि दोनों स्वर चलते हैं, तो दो लड़के पैदा हों या दो लड़की।

प्र०—लड़का या लड़की दीर्घायु होंगे या अल्पायु?

उ०—यदि प्रश्नकर्त्ता और अभ्यासीके स्वर एक समान हैं, तो लड़का या लड़की चिरायु है, अन्यथा अल्पायु। यदि वायु

तत्वहै तो गर्भपात हो या लड़की हो। सुषुणा स्वरमें आकाश-तत्त्व चलता हो, तो गर्भपात है। आकाश तत्त्व में हिंजड़ा पैदा होता है। यदि अभ्यासी का दाहिना स्वर हो और प्रश्नकर्त्ताका बायां और प्रश्नकर्त्ता यदि बाँयी ओर से प्रश्न करता है तो लड़का और उसकी माता दोनोंका देहान्त हो जाय। यदि पृथ्वी तत्त्व चल रहा हो तो लड़की दीर्घायु हो। जल-तत्त्व से लड़का सदाचारी पैदा हो। अग्नि-तत्त्व चलता हो, तो गर्भपात हो।

## रोग-सम्बन्धी प्रश्न।

प्रश्न-उत्तर। यदि बन्द स्वर की तरफ से प्रश्नकर्त्ता चलतें स्वरकी तरफ़ बैठकर प्रश्न करे, तो रोगी को आराम हो जायगा। यदि प्रश्नकर्त्ता और अभ्यासी दोनो एक ही तरफ़ हों, तो रोगीको आराम हो जावेगा। यदि नक्षत्र, लग्न, दिन, तिथि इत्यादि सब उस स्वरके अनुकूल हों, तो बहुत जल्द बीमारी दूर होगी, अन्यथा उतनी ही देरी होगी, जितनी कि इन सबकी अनुकूलता में भेद पड़ेगा। यदि प्रश्नकर्त्ता ऊपर से, ठहर कर, प्रश्न करे तो आसार बुरे समझे। यदि बहते स्वरकी ओर से आकर बन्द स्वर की तरफ़ आवे तो बीमार मर जावे। यदि प्रश्नके समय बांये स्वर में जल या पृथ्वी-तत्त्व हों तो शीघ्र ही आराम हो। वायु और आकाश-तत्त्व

प्रश्नके समय जारी हों, तो मरीज़ मर जावे; अन्यथा उसको आराम मिले।

## यात्रा—सम्बन्धी प्रश्न।

यदि प्रश्नकर्त्ता और अभ्यासी दोनों का दाहिना स्वर चलता है, तो यात्री शीघ्र ही वापिस आ जायगा। यदि दोनोंका बाँया स्वर चलता हो, तो देर से वापिस आवे। यदि दोनोंके स्वर भिन्न-भिन्न हों तो बहुत देर में यात्री वापिस आवे। यदि चलते स्वर से आकर बन्द स्वर की तरफ़ बैठकर प्रश्नकर्ता किसी प्रकार का प्रश्न करे तो कार्य कदापि न हो। सम्भव है कि बना बनाया काम भी बिगड़ जाय। यदि प्रश्नकर्ता बन्द स्वरकी तरफ़ से आकर चलते स्वर की तरफ बैठकर प्रश्न करे तो—चाहे उस काम में कैसी भी निराशा हो—वह काम बन जायगा। यदि उसी समय पृथ्वी या जल-तत्त्व चलता है, तो चाहे कितने भी विघ्न सामने हों, कार्य अवश्य पूरा हो जाय।

सुषुम्णा स्वर में यदि कोई प्रश्न किया जायगा, तो वह कभी भी पूरा न हो। परन्तु यदि सामने से ठहर कर प्रश्न करता है, तो उसका फल मध्यम है, सम्भव है कि कार्य्य हो जाय।

साधारण फल। यह बात स्वरोदय-शास्त्रियों में प्रसिद्ध है कि जब कोई प्रश्नकर्ता आकर प्रश्न करता है और उस समय

यदि दाहिना स्वर चले तो काम बन जाता है। परन्तु यह भूल है, कभी-कभी इससे उत्तर ठीक मिल जाता है, जबकि प्रश्नकर्त्ता दाहिनी ओर बैठकर प्रश्न करता है, अन्यथा नहीं।

आकाश-तत्त्वमें—दुर्भिक्ष हो, वर्षा न हो, प्रजा दुःखी रहे, राज्यमें उत्पात हो, घास भी कम हो। अग्नितत्त्व में अकाल पड़े, रोगादिक बढ़ें, वर्षा थोड़ी हो, वायुतत्त्वमें नगरमें उत्पात हो, वर्षा थोड़ी हो, अकाल पड़े।

यह मालूम करनेके लिए कि इस समय कौन दिनका दौरा है—यह मालूम करे कि इस समय कितने घड़ी दिन चढ़ा है। सूर्योदयसे ढाई घड़ी तक उसी दिनका दौरा और बादको २॥ घड़ी तक उसके छठवें दिनका दौरा रहता है। इस तरहके हिसाबसे मालूम कर ले कि, इस समय किस दिनका दौरा है। उदाहरणके लिए आज रविवार है, पहली ढाई घड़ी रविवार—दूसरी ढाई घड़ी शुक्र—तृतीय—बुध इत्यादि।

# आठवाँ परिच्छेद।

## कालज्ञान

मृत्युके पूर्व ही मृत्युका हाल मालूम करना असाधारण बात है। परन्तु स्वरोदय-शास्त्रने इस विषयके अनुभव से कुछ सिद्धान्त निश्चित किये हैं, जिनसे मनुष्य बहुत पहले से ही अपनी मृत्युका हाल मालूम कर सकता है। यदि आठ पहर तक दाहिना स्वर चले और स्वर न बदले, तो जानो कि मृत्यु तीन वर्ष के भीतर हो जावेगी। यदि १६ पहर दाहिना स्वर चले और बदले नहीं, तो दो वर्ष जीवनके शेष समझो।

यदि तीन दिन और तीन रात बराबर दाहिना स्वर चले तो एक वर्ष जीवन का शेष है।

यदि सोलह दिन और सोलह रात दाहिना स्वर चले, तो एक मास जीवन शेष है।

यदि एक मास रात-दिन दाहिना स्वर चले, तो दो दिन जीवनके बाकी हैं।

यदि पाँच घड़ी बराबर सुषुम्णा स्वर चले तो मनुष्य शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो। यदि मुँह से सांस निकलने लगी, तो अधिक से अधिक चार घड़ी वह और जीवित रह सकता है।

यदि बाईं साँस चार दिन या आठ दिन या इस से अधिक चले, तो अभी जीवन-यात्रा लम्बी है—शीघ्र ही समाप्त न होगी।

रातको दाहिना स्वर और दिनको बायाँ चले, तो मनुष्य दीर्घायु रहे। यदि रातको बायां और दिन को दाहिना स्वर लगातार एक मास तक चले, तो मनुष्य छै मास में मर जावे। यदि आकाशतत्त्व तीन रात और तीन दिन बराबर चले, तो मनुष्य एक वर्ष में मर जावे।

# नवाँ परिच्छेद।

तत्त्वोंको वशमें लानेसे मनुष्य प्रकृतिके गुप्त भेदों को भली भाँति समझ सकता है, और अपने जीवन को नियमित जीवन बना सकता है। तत्त्वोंको वश में करने का पहला साधन तो यह है, कि मनुष्य अपने सब काम स्वरके अनुसार करे—जिससे स्वर उसके अधीन हो जावें। दूसरा साधन यह है कि, प्रातःकाल या जिस समय मन सांसारिक झंझटोंसे निश्चिन्त हो, परन्तु प्रातःकाल का समय ही अच्छा होता है, उस समय आकाश में किसी स्थानपर दृष्टि जमावे। कुछ दिनोंके पश्चात् उसको रङ्ग बिरङ्गकी आकृतियाँ इधर-उधर आकाश में फिरती दिखाई देंगी और अभ्यास के बाद जो तत्त्व अभ्यासीका चल रहा है उसी का रंग आकाशमें दिखाई देगा। नेत्र बन्द कर लेने से भी वही रङ्ग दिखाई देगा। तृतीय साधन यह है कि, जब इतना अभ्यास हो जावे और तत्त्वों को आप भली भाँति पहचान सकें, तब रात्रिको तीन चार बजे सोकर उठे। सब प्रकारसे निश्चिन्त होकर आसन मारकर बैठ जायँ और मालूम करें कि, इस समय कौनसा तत्त्व चल रहा है,। जब यह मालूम हो

जावे कि इस समय कौनसा तत्त्व चल रहा है, तो इस प्रकार से साधन करें।

यदि आकाश-तत्त्व चल रहा है, तो उस समय यह ध्यान करें कि बहुतसा प्रकाश है—जिसका कोई रूप नहीं है। उस समय (नँ) का जाप करें यदि अग्नि-तत्त्व चल रहा हो, तो एक त्रिकोण आकृति का ध्यान करें—कि इसका रङ्ग लाल है—जो शरीरमें गर्मी रखती है, भोजन जिससे पचता है और यह देखो कि तुम इस स्वरूप की गर्मीको एकाएक बरदाश्त नहीं कर सकते। इस समय(रँ) का जाप करो। यदि जल-तत्त्वका वेग है, तो अर्द्ध-चन्द्रमा का ध्यान करो, जो अति प्रज्वलित और अति निर्मल है। यह गर्मी और प्यासको दूर करता है। मानसिक योग के बलसे गहरे पानीमें ग़ोता लगाओ। इस समय (वँ) का जाप करो। यदि पृथ्वी-तत्त्व चलता हो, तो चतुष्कोण आकृति का ध्यान करो, जिसका रङ्ग पीला है। इसमेंसे मीठी बास निकल रही है—जो कि सब प्रकार की बीमारीको दूर कर सकती है। इस समय (हम) का जाप करो। यदि वायुतत्त्व चल रहा है, तो गोल आकृति का ध्यान करो, जिसका रङ्ग हरा है—जो तूफ़ान मेंसे पक्षीके समान ऊँचा उठता दिखाई देगा। इस समय शब्द (थम ) का जाप करो।

इन तत्त्वो के साधने से मनुष्यको बड़ी भारी शक्ति प्राप्त हो जाती है। इन्हींके बाद मनुष्य योग और स्वरोदयका सम्बन्ध

समझ सकते है, इसकी स्वाभाविकता पर विश्वास ला सकते हैं। स्वरोदय-शास्त्रियों ने और शिवजी ने लिखा है कि, आकाशतत्त्व जिसके वशमें है—वह त्रिकालज्ञ होजाता है। वायुसे अति बली हो सकता है। अग्निसे गर्मी बरदाश्त कर सकता है। जलतत्त्व से पानीका भय नहीं रहता। पानी बरसा सकता है। पृथ्वीतत्त्व से स्वास्थ्य को बनाये रह सकता है।

कुछ समय अभ्यास करनेसे ये सिद्ध होजाते है और फिर हमेशा के लिये ये अपने वशमें हो जाते हैं। इनसे बड़े-बड़े काम निकाले जाते हैं।

तृतीय खण्ड

# छाया पुरुष

## मनुष्य क्या वस्तु है ?

### विराट-दर्शन।

(१)

अविनाशी पुरुष निराकार है। सारी दुनियासे पृथक् है। वह सब जगत् में, सब मनुष्यों में, जल-थल में, सर्वत्र एकसा है। मनुष्य के मन और बुद्धिका वही प्रेरक है। सबसे पृथक् भी वही है। इसके बिना सारा संसार जड़ है। इस परमात्मा में कोई इच्छा नहीं उठती है। वही तुम हो। तुम अपने आप हो। तुम्हारे

बाहर कोई वस्तु नहीं है। समस्त भू-मण्डलका बीज तुम्हारे शरीरमें—मनमें—और बुद्धि में है। समस्त संसार का तुम में अन्त होता है। इसके आगे तुम्हारे शरीर का जो प्रेरक है,वही प्रेरक मूल-प्रकृति का है। इसलिए सब कुछ तुमही हो। सब तुम्हारा अपना आप है।

यह एक बड़ा गहन विषय है। बड़े-बड़े सिद्ध मुनीश्वरोंने इसे छोड़ दिया। योगी यद्यपि इसके यथार्थ अर्थ को समझता है, परन्तु बोल नहीं सकता, न वह लिख सकता है। कहीं नेत्रोंकी ज्योति को पुतली देख सकती है? कहीं मन बुद्धि, अहङ्कार, महत्ताकाश भी अपने चैतन्य अधिष्ठाता या स्वामी को देख सकते है? असंभव।

अति साधारण मनुष्य योगाभ्यास करके इसके भेदको जान सकता है। परन्तु भेद के जानते ही वह इसमें लीन हो जायगा। उस समय तुम समझ जाओगे कि, धर्म का असली हेतु क्या है। जिसको तुम अभी तक धर्म मान रहे हो, वह बाहरी—ऊपरी—आडम्बर है। निष्काम और पवित्र ब्रह्मविद्या और ही है। और इसी एक मार्ग का संसार के सब ही धार्मिक नेताओं ने आश्रय लिया है। यह ब्रह्म-विद्या तुम्हारे आत्मा का स्वाभाविक गुण है।

तुम्हारे स्वभाव के गुणका नाम ही योग है। मनुष्य, पुरुष, स्त्री, ब्रह्म, जो कहो वह यही है। शोक,कि हम अपने स्वभाव को भूले हुए हैं। जहां देखो दूकान्दारी है। सांसारिक-

जन सुख के अभिलाषी अवश्य हैं; परन्तु उन्होंने पदार्थ में ही सुख माना है। इच्छा—तृष्णा एक सूद-दर-सूद विषय है। यह एक ऐसी अपवित्र प्यास है कि, इसे यदि एक बार बुझाओ, सौ बार उठेगी—दस बार बुझाओ, तो हज़ार बार प्रचण्ड होगी।

यदि किसी पदार्थ का ध्यान वर्षों तक लगा रहे, तो उस की पूर्त्ति के समय जो आनन्द आता है, उसका वर्णन अनु-भवी लोग ही कर सकते हैं। वर्षों की वृत्ति उस पदार्थ की प्राप्ति के लिये एकत्रित हो रही थी। जब वह पदार्थ प्राप्त हुआ,मन थोड़ी देरके लिये एकाग्र हुआ। इसी मानसिक एकाग्रता को मूर्ख—संसारी—मनुष्य विषयानन्द कहते हैं। यथार्थ बात यह है कि, विषय की प्राप्ति में सुख नहीं है; परन्तु वृत्तिके एकाग्र होनेमें सुख है। ऐसा उपाय क्यों न किया जाय कि, वृत्ति वर्षों तक एकाग्र रहे। योगाभ्यासी जानता है कि, सुषुप्ति अवस्थामें आत्मा को एक प्रकार से अव-र्णनीय आनन्द प्राप्त होता है; परन्तु सुषुप्ति से उठे किसी मनुष्य से आप पूछें, तो वह इस विषय में मौन रहेगा। जब इसका वर्णन करना कठिन है ,तब ब्रह्मानन्दका वर्णन कैसा ? वह तो दूर की बात है। सुषुप्ति में जो आनन्द आता है, उसका कारण यह है कि, मन एक ऐसी उच्च दशाको प्राप्त होता है, जहाँ कर्म बीज-रूप बन कर कुछ समय के लिये सिमट जाते हैं :—

*जैसे कछुआ सिमटकर, आपहिं माहिं बिलाय ।*

*तैसे योगी प्राणमें, रहे सुरत लवलाय ॥*

बहुतसे सज्जन इस मार्ग पर सन्देह करते हैं। उनका सन्देह ठीक है। अन्धविश्वास अथवा "बाबा वाक्य "प्रमाण से यह सन्देह कई गुणा श्रेष्ठ है।

इसकी प्राप्तिके लिये अनुभवकी आवश्यकता है; अभ्यास की ज़रूरत है। आप सूक्ष्म शरीर नहीं हैं, स्थूल नहीं हैं, कारण नहीं है। ये सब शरीर तो आप के आश्रित हैं। अभ्यास करने से पहले आपको यह शङ्का होगी कि कारण, सूक्ष्म, स्थूल, शरीर हैं या नहीं; अथवा मन की अटकल-पच्चू बातें तो नहीं हैं। अभ्यास करते-करते ये सब सन्देह दूर हो जायँगे। आप इस साधन को करें। आपको मालूम हो जायगा कि, इस स्थूल शरीर को छोड कर आपके अन्य शरीर भी हैं। इनसे परिचित होते ही आप अपने में लीन हो जायँगे और इस प्रकार थोड़े ही समय में आप का लय-योग सिद्ध हो जायगा।

## साधन ।

एक कमरा अपने लिये अलग एकान्तमें नियत करो। उसे आस्मानी रंग से अच्छी तरह रँगा दो। दीवारें, छत, जमीन सब आरामप्रद हों। रोशनीके लिये दो-तीन दर्वाज़े रहें,
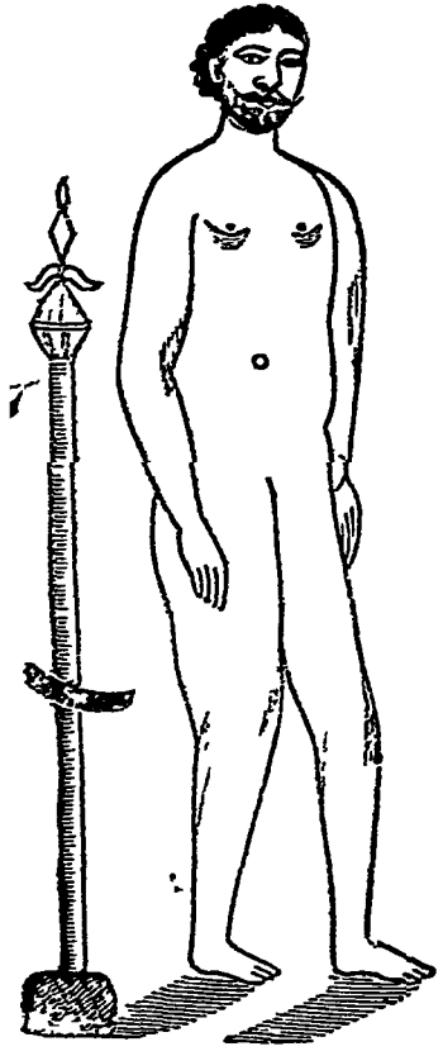
परन्तु मन पर आस्मानी रंग की चादरें पड़ी हों। अब तुम एक मोठे तेलका दिया जलाओ और अपने कण्ठ पर अपनी छाया की ओर देखना प्रारम्भ करो। एक घण्टे के पश्चात् दृष्टि हटाकर ऊपर लाओ, दस मिनिट देखते रहो। अहा! कैसा आनन्द आवेगा! फिर तुम उसी विचार में मग्न हो जाओ। किसी से बोलो नहीं, छाया-पुरुष का ही ध्यान बना रहे। दिनमें तीन बार और रात में तीन बार तुम इसको करो—और दिन-भर इसी में मग्न रहो। समाप्त बाद, बाहर निकल कर आकाश की ओर देख लिया करो; फिर अपने कमरे में चले जाया करो। ४० दिन में छाया-पुरुष सिद्ध होगा। तुम उससे बात कर सकोगे। छाया-पुरुष क्या है? तुम्हारे सूक्ष्म और कारण शरीर का सूक्ष्मांश। योगाश्रम तुम्हें सिद्धि के ढकोसलों में नहीं लाना चाहता, परन्तु सीधा मार्ग बतलाना चाहता है,जिससे तुम अपना स्वरूप पहचानो। जो धोती या लङ्गोट आसमानी रंगका पहले दिन हो, वही चालीस दिन रहे। मौन रहनेसे गरमी बदन में बहुत पैदा होगी, अतः ठण्डी वस्तुयें खाओ।

# वैराट-दर्शन

## (२)

## छाया पुरूष का साधन ।

---

रात्रि के नौ बजे तुम एक ऐसे कमरे में जाओ, जहाँ पर कोई दूसरी वस्तु न रक्खी हो और न जहाँ किसी प्रकार का हल्ला होता हो। दरवाज़ा बन्द कर दो। अब तुम कमरेमें अकेले हो। सब कपड़े उतार डालो, यहाँ तक कि बिल्कुल नंगे हो जाओ। दक्षिणकी ओर मुँह और उत्तरकी ओर पीठ करो। दीवारसे इतनी दूर पर खड़े होजाओ कि, एक चिराग पीठ के पीछे रखने से तुम्हारी पूरी छाया दीवार पर पड़े। पीठके पीछे चिरागको भी जमा दो। यदि आपका कमरा तङ्ग हो, तो पृथ्वी ही पर छाया डाल सकते हो।

टकटकी बाँधकर अपनी छाया की ओर देखना आरम्भ करो। यहाँ तक कि टकटकीके लक्ष्य-स्थान कण्ठमें सूर्यका सा तेज—प्रकाश—दीखने लगे। बराबर एक घण्टा देखनेके पश्चात् अपनी नज़र दायें-बायें करो। इस प्रकार करनेसे योग्यपुरुष को तीन ही दिनमें विराट् का दर्शन हो जायगा। पहले-पहल कमज़ोर दिल अवश्य ही स्वरूपके तेजको देख कर डरने लगते हैं और इस नये और अद्भुत चमत्कार को देखकर

घबरा जाते हैं, परन्तु याद रक्खे कि देवता किसीको कष्ट—तकलीफ़—नही देते। साधनके समय जिस मन्त्रका जाप करना चाहिये, उसे नीचे लिखते हैं। प्रयोक्ता अभ्यास के समय हाथमें माला ले ले और जपे। एक महीनेमें पूरे और स्थूल शरीर का दर्शन होने लगता है। तब माला लेने की कोई ज़रूरत नहीं है, केवल इस मन्त्रका ध्यान करना होगा, अर्थात् यह मन्त्र विराट् के आवाहन का है। इसके अर्थ का विचार करते हुए टकटकी बांधनी होगी :—

## मन्त्र—ओं क्लीं परम ब्रह्मणे नमः।

इसमें "क्लीं" मूल है और बाक़ी के सब विनय इत्यादि के हैं।

जब यह "क्लीं" कहो, तब अवश्य ध्यान करना होगा। जिस प्रकार हम लिख रहे हैं, उसी प्रकार आरम्भ करो।

एक मास के पश्चात् देवताकी प्रसन्न मूर्ति तुम्हारे सामने आवेगी, जिसका शरीर सूर्य्यनारायण के तेजसे कई गुणा तेज चमकनेवाला होगा, परन्तु शान्तिप्रिय होगा, नाना प्रकार के रङ्ग बदलेगा, सैकड़ों प्रकारके संकेत करेगा, समय-समय पर उसके कई अङ्ग कटे हुए दिखाई देंगे। जिस दिन छाया के धड़ पर शीश न हो या शिर कटा दिखाई दे, तो जान लो

कि छः मास के पश्चात् तुम निस्सन्देह मृत्यु को प्राप्त हो जाओगी।

एक सप्ताह तक मकान के भीतर ही इधर उधर देख लिया करो, फिर जल्दी-जल्दी बाहर आकर निर्मल आकाश की ओर देखना होगा, फिर एक मास के पश्चात् केवल मकान के भीतर ही देखना होगा।

यह काल-ज्ञान बताने का साधन छः मास तक करना पड़ता है। यदि एक वर्ष तक करोगी, तो जो वस्तु मँगाना चाहोगी, पल भरमें पास आ जायगी। बड़ी-बड़ी शक्तियाँ तुम में से प्रकट होंगी। तीनों काल ( भूत, भविष्यत्, वर्तमान ) का हाल तुम्हें मालूम होगा। यदि तीन वर्ष तक करोगी, तो ब्रह्म-रूप हो जाओगी। शिव जी महाराज, जो इसके प्रोफेसर हैं, कहते हैं—

*शिव कहें सुन पार्वती, छायापुरुष की बात।*
*तीन वर्ष के अभ्यास से, ब्रह्मरूप हो जात॥*

## विराट-दर्शन।

### ( २ )

आप स्वतः स्वपुरुषार्थ से वीराट को सिद्ध कर लीजिये। एक बड़ा-सा दर्पण, जिसमें तुम अपना शरीर अच्छी तरह देखो सको. कहीं से ले आओ ( जिस दर्पणमें छाती तक ही दीखे,

वह भी काम दे सकता है )। दिनमें किसी समय अपनी नाक की नोककी ओर एक घण्टे तक बिना पलक झपकाये देखते रहो। जब थक जाओ तो गर्दन उठाकर ऊपरकी ओर—आकाशकी ओर—देख लिया करो। जिस दिन आपको श्वेत रंगका विराट दिखाई दे, उस दिन साधन सिद्ध हुआ जानो। प्रत्येक मनुष्य को एक सप्ताह के भीतर ही भीतर सिद्ध हो जाता है। जब आप को साधन करते-करते तीन मासका समय बीत जायगा, तो आप किसी भी वृक्ष, पर्वत, घर, मनुष्य पशु, पक्षी इत्यादि की ओर देखकर आकाशकी ओर देखनेसे उनके बुरे-भलेका हाल बता सकोगे।

परमात्मा की ओर से अच्छे या बुरे का फल पहले विराट पर पड़ता है, तब स्थूल शरीर पर। जिस बीमार का आप इलाज किया चाहते हैं, पहले उसका विराट देख लीजिये। यदि धड़ पर सिर नहीं है, तो कभी भी अच्छे करने का बीड़ा मत उठाओ, वह कभी नहीं बच सकता। जिसके धड पर शीश हो, बेधड़क उसका इलाज करो, वह ज़रूर ही अच्छा होगा। यह योगियोंके घर का भेद है। इससे लाभ उठाओ।

चतुर्थ खण्ड

# चौथा खण्ड

## मैस्मरेज़्मका आरम्भ ।

( १ )

मीडियम को सबसे सरल रीति मैस्मराइज़ करने की यह है कि, एक निर्जन मकान में जहाँ किसी प्रकार का हल्ला इत्यादि न हो अपने सामने बैठाओ । उसको— मीडियम को,—पीठ उत्तर की ओर, और मुँह दक्षिण की ओर हो । उससे समझा कर (जैसा कि लेकचरमें कहा जाता है और जिससे किसी के मन पर असर पड़ता है) कहो कि, तुम यह इच्छा करो कि मैं मैस्मराइज़्ड—बेसुध—हो जाऊँ और मुझे एक मीठी नींद आजावे । उसको आज्ञा दो कि वह तुम्हारी बाईं नेत्र की पुतली को अपनी दृष्टि का लक्ष्य बनाकर देखना आरम्भ करे, परन्तु आँख न झपके । तुम एकाग्रचित्त हो कर उसके बायें नेत्र की पुतली को अपने देखने का लक्ष्य मान कर मन में यह दृढ़ इच्छा करो कि वह बहुत जल्दी मैस्म-राइज़्ड हो जाय , अर्थात् अचेत होकर पीछे गिर पड़े, यह

भी खयाल किये रहो, कि तुम्हारे हृदय से तुम्हारी इच्छा के साथ एक शक्ति उठती है, जो अभी मीडियम को बेसुध कर देगी। इसकी असल कुञ्जी भी आप के हवाले करते हैं कि, आकर्षण शक्ति जो अधिक या कम सब जीवों में वर्त्तमान है अपने हृदय से उठ कर उसके मस्तक में जगह बना लेती है। धीरे-धीरे उसके विचार आप के विचार से हो जाते हैं और वह बहुत जल्दी ही बेसुध होजाता है। जब मामूल—मीडियम—की आँखो में ज़रा सुस्ती—नरमी देखो, तब उस की दोनों हाथों के अँगूठे अपने हाथ में ले लो और उनको इस तरह मिला दो कि, तुम्हारी और उसकी शक्ति एक दूसरेके शरीर में जा सके। अँगूठे जब आप दोनोंके मिल जायँगे, तो बराबर आपकी और आपके मीडियमकी शक्ति एक दूसरे के शरीरमें आने जाने लगेगी। जब ऐसा होवे और उसकी शक्ति तुम्हारी ओर आवे, तो उसको भी मेस्मराइज्ड करके उसकी तरफ़ भेजो और अपनी शक्ति को भी भेजो। इस रीति पर कभी दो तीन मिनटमें और कभी पाँच मिनट में मीडियम बेहोश हो जाता है।

इस प्रकार करने से एक मिनिट में कई चक्कर लग जायँगे। जब मीडियम पीछे गिर पड़े, तो तुम पास करना आरम्भ करो। यह विचार करो कि हमने थोड़ी देर पहले जिस शक्ति को उसके मस्तक में भरा था, अब उसी को सारे शरीर में फैला रहे हैं। तुम शक्तिको आँखों और हाथों के द्वारा भरते जाओ। जब देखो कि मीडियम बहुत बेसुध होगया है तब

उसको बुलाओ। यदि न बोले तो कानमें ज़ोर से कहो कि "बोलो" इस पर वह अवश्य बोलेगा। उसके हाथ कभी नहीं लगाना चाहिये। इसमें लोग बड़ी भूल करते हैं। यदि वह इस पर भी न बोले, तो इतना काफ़ी समझो कि किसी वस्तु से उस के हाथको ऊँचा करो, और कहो कि वह ऊँचा ही रक्खे। यदि वैसा रहने दे, तब तो कामयाबी पूरी है और जब हाथ भी खड़ा न रक्खे, बिल्कुल अचेत रहे, तो उसे दूसरी रीति से चेत में लाओ।

रीति—उस के कपालके सामने एक कोरा काग़ज़ लेजाओ और कहो कि रोशनी दीख रही है, जल्दी सुध में आओ। यदि वह कहे कि हाँ रोशनी दीखती है, तो धीरे-धीरे प्रश्न पूछना आरम्भ करो। ज्यों ज्यों प्रेक्टिस, अभ्यास, बढ़ाओगे रहस्य खुलेंगे।

## अद्भुत शक्ति।

यह देखा गया है कि साधन करने के पश्चात् बहुत थकावट मालूम होती है, इसका कारण यह है कि आकर्षण-शक्ति, जो मनुष्य की जान है, शरीर से बहुत निकल जाती है। यदि आप अपनी शक्ति किसी और साधनसे पूरी न करलेंगे, तो आश्चर्य नहीं कि किसी-न-किसी दिन आपको एक बड़ी भारी कमजोरी का सामना करना पड़ेगा। इसलिये साधक को चाहिये कि, वह किसी न किसी तरह अपनी शक्ति पूरी करले। हम एक साधन इस के वास्ते भी देते हैं।

सूर्य्यनारायण के सामने प्रातःकाल आँख मूँदकर खड़े हो जाओ और दृढ़ विचार करके प्रार्थना करो कि "भगवन्! हम को शक्ति प्रदान करो।" "भगवन्। हम को शक्ति प्रदान करो" इत्यादि। बस, पाँच मिनट रोज खड़े रहना पड़ेगा और शक्ति पूरी होती जायगी। मन से तमोगुणी विचार निकल कर शुद्ध सतोगुणी विचार तुम्हारे हृदय को जगादेंगे। इच्छा बिना भी सूर्य्यनारायण कमी पूरी कर सकते है,परन्तु इच्छा करनेसे झटपट कार्य्य सिद्ध हो जायगा। नेत्र खोल कर अभ्यास करनेका साधन भी अन्यत्र कहीं आया है।

## मैस्मरेज़्मके द्वारा बीमारियोंका इलाज ।

तिब्ब यूनानी, भारतीय वैद्यक और अँगरेजी चिकित्सा में बड़ा भेद है। कोई दवा की तासीर बतलाने में भेद रखता है, कोई रोगों के निदान में भेद रखता है। विलायत में मैस्मरेजम के द्वारा वर्षों से इलाज जारी है। वर्त्तमान युद्ध में घायल योद्धाओं की चिकित्सा में यह विद्या बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई हैं। बीमारी गर्मी से है या सर्दी से, इसके जानने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। पानी, शक्कर, बादाम आदि वस्तुओं पर प्रयोग करके बीमार को दे दिया जाता है, वह अच्छा हो जाता है। पुराने से पुराने बुखार भी दूर हो जाते हैं। यदि रोग गर्मी से है, तो बायें हाथ

से आकर्षण शक्ति छोड़नी होगी। यदि रोग ठण्ड से है, तो दाहिने हाथ से। यदि अपनी बीमारी दूर करनी है, तब भी यही तरीका है।

जो रोग शीत से पैदा होते हैं उनका इलाज भी इससे हो जाता है। यदि रोग गर्मी से है, तो एक तालाबके किनारे जाकर अपने मरीज़—रोगी—का ध्यान पानी में करें कि जल-तत्त्व उसमें प्रवेश हो रहा है। चाहे रोगी कितनीही दूरी पर हो, आप उसको बिना सूचित किये ही अच्छा कर सकते है। यदि वैसे भी किसी को मङ्गल-कामना के हेतु आपके दो चार मित्र मिल कर प्रार्थना करें अर्थात् आकर्षण-शक्ति को मौज पर लावें, तो आपके मित्र की दशा सुधर जायगी।

यदि रोग बहुत ही असाध्य है, तब आप छाया-पुरुष से सहायता ले सकते हैं। मित्रका फोटो लेकर उसके 'छाया-पुरुष' पर प्रयोग कीजिये। यदि अच्छा होनेवाला होगा, तो छाया पूर्ण होगी। आप प्रयोग करते जाइये। उसकी छाया को अपनी शक्ति प्रदान कीजिये, वह अच्छा हो जायगा।

---

*नोट—इन सब साधनाओंसे कमज़ोरी अवश्य होती है, इसलिए सूर्य्यके साधनसे अपनी शक्तिको पूरा कर लिया करें*

# सूर्य्योपासना ।

—❧✻☙—

इस साधन को विराट का देखना भी कहते हैं। ॐ श्रीं भांग—यह सूर्यका बीज मन्त्र है। इस मन्त्र से सूर्य इधर आकर्षित होता है। सूर्य-शक्ति की बहुत ही सूक्ष्म फिलासफी है। इस में अनादि भरी हुई है। सूर्य्य को ही परमात्माकी ओर से पहले-पहल उपदेश दिया गया था। पतञ्जलि का कथन है कि, सूर्यका ध्यान करने से योगी समस्त भूमण्डल का ज्ञान प्राप्त करता है।

'ओश्म् श्रीं भांग',—यह मन्त्र सूर्य से प्रथक् नहीं है, न सूर्य इस से प्रथक है। ॅ इस बिन्दु को शक्ति-रूप माना है, जिस के उच्चारण करने में गगनमण्डल में गूँज पैदा होकर सूक्ष्म हो जाती है और उसी समय अपने नाम वाले को आकर्षित करती है। बिना ॅ इस बिन्दुके कोई मन्त्र नहीं बन सकता।

छाया पुरुष के विराट में और इसके विराट में बहुत भेद है। छाया पुरुष के विराट से अभ्यासी को सब शक्ति अपने पास से देनी होती है, परन्तु सूर्योपासना में अपनी शक्ति ख़र्च करने की आवश्यकता नहीं। प्राचीन हिन्दुओं का यह सिद्धान्त था कि, मनुष्य की छाया में उतनी ही शक्ति होती है जितनी कि नग्न पुरुष में होती है। महाभारतमें द्रोणाचार्य्य और एकलव्य की कथा भी इसी बात को सिद्ध करती है।

हम सब लोग ब्रह्मविराट के नमूने पर छोटे-छोटे विराट बनाये गये हैं। हमारे उदर के समान ही इस विश्व का उदर आकाश है। हमारे शरीर में नसें हैं, तो बाहरी जगत् में नदी नाले बह रहे है। विश्व के दो नेत्र है,—सूर्य और चन्द्रमा। हमारे भी दो ही नेत्र हैं। अभिप्राय यह है कि, जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। हमारे शरीर में अगणित छोटे-छोटे छिद्र है, जिनके द्वारा देखने से ब्रह्मानन्द का आनन्द अनुभव होता है।

यदि समस्त संसारका ज्ञान प्राप्त करना है, तो सूर्योपासना करो। संसार का सारा खेल इसी आंख पर है। संसार इसी से हरा-भरा रहता है। नारङ्गी को पहले दिन कड़ुवा, एक सप्ताह के बाद खट्टा और एक मास में मीठा, इसी की किरणें बनाती हैं। स्वाद और रङ्ग में परिवर्त्तन भी इन्हीं किरणों द्वारा होता है। जब यही विराट-देव अपना चक्र समाप्त करके सूक्ष्म रूपमें लय हो जाता है, तब सब जीव अपने कर्मों की इच्छाओं को अपने में समेटते हुए उसके भीतर लीन हो जाते है। इसी को प्रलय कहते हैं। इसी विश्व के नेत्र से पुनः इस संसार की उत्पत्ति होती है।

## साधन।

सूर्य का बीज-मन्त्र जो ऊपर लिखा हुआ है, उसे याद कर लें और फिर प्रातःकाल किसी निर्जन—एकान्त—स्थानमें

खड़े होकर सूर्य की ओर नेत्र खोल कर टकटकी बांधें और ध्यानपूर्वक, एकाग्रचित्त होकर सूर्य की ओर देखते हुए मन में मन्त्र पढ़ते जावें। मन्त्र का वज़न हृदय पर रहे, किन्तु जिह्वा अथवा होठ न हिलें। इस साधन को निष्काम-भावसे आरम्भ करें, तब आप ब्रह्म-विराट की भीतरी दशा अपनी आँखों से देखेंगे।

---

*नोट—इसके देखने के लिये नियत समय नहीं है। आप जितना अभ्यास करेंगे उतनी ही सफलता आपको प्राप्त होगी। यदि एक घण्टा रोज़ देख सकें तो ४० रोज़का साधन बस होगा। रात्रिको चन्द्रमा या आकाशकी ओर देख लिया करें।*

# चन्द्रोपासना।

महर्षि पतञ्जलिने लिखा है कि चन्द्रमा पर ध्यान करने से योगी समस्त तारागणों का ज्ञान प्राप्त करता है। इस साधन के द्वारा प्रत्येक ग्रहसे हम सम्बन्ध जोड सकते हैं अथवा मङ्गलादिक तारोंका ज्ञान अन्तर्दृष्टि से प्राप्त कर सकते हैं।

एक आदि संकल्प से धुंधकारसा होकर आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश के परमाणु इधर-उधर हिले। उनसे वायु की उत्पत्ति हुई। वायु की रगड़से अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ। अग्नि से जल और जल से यह पृथ्वी बनी। इसी प्रकार अनेक तारागण,अनेक लोक, अनेक पृथ्वियाँ बन गईं। आपस में आकर्षण-शक्ति पैदा हो गई। इस पृथ्वी के प्रत्येक तत्त्व से और तारागणोंके आकर्षण से नये सामान बने। प्रथम जल को लीजिये। वह सूरज की गर्मी से भाफ बना। आगे यही जल चन्द्रमा से शक्ति, रङ्गत और शीत पाकर बर्फ बना। चन्द्रमा के निरन्तर प्रभाव पड़ने से यह बिल्लौर के रूप में आया। जैसा कि आज हम देखते हैं कि बर्फीले पहाड़ों पर बिल्लौर अधिक मिलता है। इसी बिल्लौर पर नव-ग्रहों ने अपना-अपना प्रभाव डाला; जिससे नौ रत्न हुए। तासीर और रङ्गत उनने अपनी-अपनी इस बिल्लौर को प्रदान

को। उदाहरणार्थं लाल का रङ्ग लाल है। इसपर सूर्य का प्रभाव पड़ा। हीरा शीतल स्वभाव का और श्वेत रङ्गका है, इस पर चन्द्रमा का प्रभाव पडा। इसी भाँति जब पृथ्वी-तत्त्व पर इन्हीं नव ग्रहों का प्रभाव पडा, तो नौ धातुएँ बनीं। मनुष्य का नव ग्रहों से घनिष्ट सम्बन्ध बताते हुए हम अब चन्द्रोपासना का वर्णन करते हैं।

## साधन।

योगी को चाहिए कि श्वेत वस्तुएँ जैसे दूध, चाँवल, मूली दही इत्यादि ही खाय। कोई चीज़ गर्म, अभ्यास से पहले या अभ्यासके वाद न खाय। सब चन्द्रमा की रङ्गत और उसके गुणों के अनुसार ही हों। आपने कभी सोचा होगा कि सूर्य जिस देशमें जाता है—वहाँ गेहूँ पकने लगता है। चन्द्रमा जिधर अपना चक्कर लगाता है, उधर चाँवल आदि श्वेत रङ्गकी वस्तुएँ पकने लगती हैं। मूँग बुध की तासीर पर है। बृहस्पति के साथ ही चने के खेत लहलहा जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह अपने सजातियों पर असर करते हैं।

इस साधन को सोमवार से आरंभ करना चाहिये, जब कि चन्द्र शुक्ल पक्ष का हो। चन्द्र का स्थान इस शरीरमें मस्तक है और रङ्ग श्वेत और स्वभाव शीतल है।

'हंस' का उच्चारण त्रिकुटी में करो और यह ध्यान करते रहो कि, पूर्णचन्द्र यहां उदय हो रहा है। श्वास रोकने की

कोई आवश्यकता नहीं। जहाँ तक हो सके, हर समय इसका ध्यान रहे। तीन मास का साधन है। साधन को तीन चार बजे रात्रि में या इधर नौ बजे रात्रि को करना चाहिये। इन दिनों आपको कम बोलना और शान्तचित्त रहना अत्यन्त आवश्यक है।
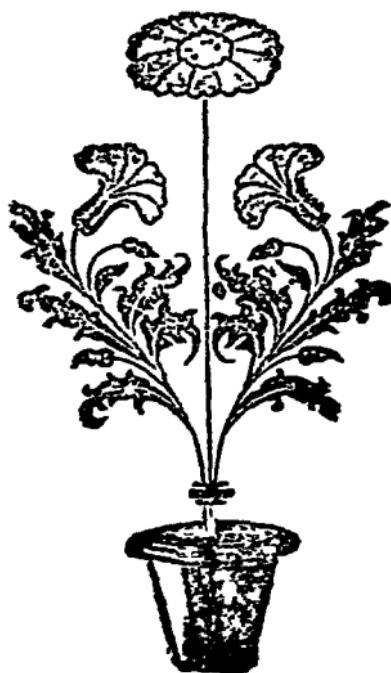
# पंचम खण्ड

है। अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़—चाहे विवाह किसी भी प्रचलित या नवीन प्रथा से हुआ हो—दूसरी स्त्री को पत्नी-भाव से न देखना 'ब्रह्मचर्य्य' कहाता है। पीड़ित प्राणियों का दुःख निवारण करना और अपनी शक्तिके अनुसार उनकी सहायता करना, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों में शामिल है। निर्धन और अनाथ मनुष्यों की सेवा करना, यदि शत्रु क्षमा चाहे तो क्षमा करना, दुःख के समय में दृढ़चित्त होकर रहना, कम खाना, कम बोलना, ये सब इसी के अङ्ग हैं। धन और सम्पत्ति को अपने हितार्थ ग्रहण न करना "अपरिग्रह" कहाता है।

नियम—योग का दूसरा अङ्ग नियम है। निश्चित समय पर काम करने की प्रतिज्ञा को नियम कहते है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान,—इसके अङ्ग है। इन्द्रियों को अच्छे कामों में लगाना, ईश्वर को सर्वव्यापक मानना, सन्तोषी रहना, निर्धनों की सहायता करना, सत्-सङ्ग करना, उसकी यथोचित पूजा करना, धर्म-पुस्तकों का पाठ करना, देश की सामाजिक वा आर्थिक दशा का ज्ञान प्राप्त करना, अपने निर्धन भाइयों के दुःखोंको दूर करना,—तप और स्वाध्याय में शामिल है।

आसन—आसन चौरासी हैं। परन्तु साधारण नियम यही है कि, अपनी इच्छानुसार साधन के समय अभ्यासी बैठ सकता है। पद्मासन और सिद्धासन सबसे श्रेष्ठ हैं।

दायें पैर को बायें पैर की रान पर रक्खें और बाँया पैर दाहिनी रान पर रक्खें, कमर को झुकने न दें और उँगलियाँ घुटनों पर हों, हाथ तने हों,—यह "पद्मासन" है। इसमें पीठ की तरफ़ से दाहिने हाथ को घुमाकर बायें पैरका अँगूठा और बायें हाथको घुमाकर दाहिना अँगूठा भी पकड़ा जाता है,

सिंहासन—दाहिना पैर मूलाधार पर रहता है और बाँया पैर गुदास्थान को दबाता हुआ नीचे रहता है। हाथ लम्बे और उँगलियाँ घुटनों पर तनी रहती है।

# प्राणायाम

---

## प्राणशक्ति ।

प्राण किसे कहते हैं? साधारणतः यह समझा गया है कि, शरीर में जो प्राणवायु स्थित है वही प्राण का सर्वांश है। वास्तव में यह बात नहीं है। पूरक या रेचक तो शरीर में स्थित प्राणको, विश्वमें फैले, विश्वके आधार 'प्राण' से मिलाने के साधन है। महर्षि कपिल के मतानुसार यह संसार दो शक्तियो में बँटा है। एक का नाम आकाश है। इसी आकाश से वायु, अग्नि, जल, अथवा पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। दूसरी शक्ति का नाम प्राण है। इसी के प्रभाव से आकाश इन रूपों में परिणत होता है। जिस प्रकार आकाश इस जगत् का कारणीभूत सर्वव्यापी अनन्त मूल पदार्थ है, उसी प्रकार प्राण भी जगत् उत्पत्ति की कारणीभूता अनन्त सर्वव्यापिनी अथवा विकाशिनी शक्ति है। प्रलय के समय सारा संसार आकाश में लय हो जाता है और समस्त शक्तियाँ प्राणमें लय हो जाती हैं। यह प्राण ही आकर्षण-शक्ति के रूप में काम कर रहा है। प्राण ही मनुष्यकी नाड़ी और नसों के भीतर जीवन प्रवाहित कर रहा है। वर्त्तमान साइन्स से यह मालूम होता है कि, ब्रह्माण्डमें जितनी शक्ति है वह सदा

उतनी ही बनी रहेगी। कभी वह अव्यक्तसूक्ष्म अति सूक्ष्म अवस्था में होजाती है, कभी व्यक्तरूपमें होकर संसार के रूप में प्रकट होती है। आगे चलकर योग-मार्ग या वेदान्तने इन दो अनादि तत्त्वोंको एक कर दिया है।

इसी प्राणके संयम करने को, अर्थात् पिण्ड-शक्ति को ब्रह्माण्ड-शक्ति में मिलाने को, प्राणायाम कहते है।

प्राणायाम सिद्ध होने से अनन्त शक्तिका द्वार अभ्यासी के लिये खुल जाता है। वह सूर्य,चन्द्र और तारागणोंको अपना ही अङ्ग समझने लगता है। इसके पहले वह अपनेको इनके आश्रित और प्रवाहोंके वशीभूत हो, अपनी स्वतन्त्र सत्ता को खोये हुए था। अब वह अपने को स्वतन्त्र अनुभव करता है। प्रकृतिका धर्म है कि, एक से अनेक करे। पुरुषका कर्तव्य है कि अनेकत्व से एकत्व पर आवे। उपनिषद्कारों ने यह प्रश्न पूछा था कि, "कस्मिन्न भगवो विज्ञाते सर्वमिदं भवति" अर्थात् ऐसी कौनसी वस्तु है, जिसके जानने से सब कुछ जाना जाता है। योगियोका कथन है कि, मनुष्य के अन्दर एक असाधारण सत्ता है, जिसके समझने से सब कुछ समझा जा सकता है, इसी सत्ताके जाननेकी विधिका नाम 'योग' है।

जिसने प्राणको जय कर लिया, वह अपने ही शरीर, मन और बुद्धिपर विजय नहीं पाता; परन्तु सबके देह, मन और आत्मापर उसकी सत्ताका प्रभाव अङ्कित हो सकता है। क्योंकि प्राण ही सब शक्तियोंका समष्टि स्वरूप है।

प्राण-शक्ति किस प्रकार वशमें की जा सकती है, यही प्राणायामका उद्देश्य है। जगत्‌की सब वस्तुओं में शरीर सबसे निकट है। मन और भी निकट है। जो प्राण विश्वकी शक्तिको चला रहा है, वही हमारे शरीर का स्वामी है। इसीलिए अपने शरीर और मन को केन्द्र मानकर योगी प्राणायाम का साधन यहीं से आरम्भ करता है।

प्रायः सब पर यह बात प्रकट होती जाती है कि, युक्ति और तर्क का क्षेत्र बहुत ही संकीर्ण है। कभी भी सत्यता की खोज इससे नहीं हो सकती। प्राणायाम और योगसाधन आपको इस चक्रसे बाहर लाकर इस बन्धनसे स्वतन्त्र कर देंगे। जब मन समाधिमें स्थित हो जाता है, तब जिन विषयोंका तर्कवादी ( Logicians ) ज़बानी अनुमान करते हैं उन्हें वह प्रत्यक्ष देखता है। योगाभ्याससे मनुष्य सृष्टिके रहस्य को समझ सकता है।

इस ब्रह्माण्डमें एक ही वस्तु है। जो पिण्डमें है, वही ब्रह्माण्डमें है। यथार्थमें सूर्यमें और तुम में कोई भेद नहीं है। वस्तु-भेद कल्पनामात्र है। एक टेबिल और एक मनुष्यमें, वस्तुतः, कोई भेद नहीं है। अनन्त जड राशि का एक बिन्दु टेबिल है; दूसरा पुरुष है। दोनों प्रकृति के बनाये पुतले हैं।

जगत्‌की समस्त वस्तुएं ईथर (Ether) आकाशसे बनी हुई हैं। इसलिये शब्द समस्त गत वस्तुओं का प्रतिनिधि माना गया

है। योग इन्हीं सूक्ष्म तत्त्वों व आदि तत्त्वोंका ज्ञान कराता है जिससे प्रकृति का रहस्य समझ में आ जाता है और जिसके जाननेके बाद किसीभी बात के जानने की अभिलाषा नहीं होती।

प्राणायाम के साथ श्वास-प्रश्वास का बहुत ही कम सम्बन्ध है। प्रारम्भिक साधनों के बाद, अपने को आकाशस्थ प्राणसे मिलाने के बाद, इन साधनों को करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, जैसा कि इसी ग्रन्थके अन्तिम परिच्छेद 'सोऽहम्"से मालूम होगा। 'प्राणायाम-साधन में हमें प्राण को वशमें करना होगा। जब प्राण पर जय होगी, तब हमारे भीतर की सब क्रियायें हमारे वशमें हो जायँगी। इनके वश में होते ही हमें इस विश्वके हिलाने के लिये एक केन्द्र मिल जायगा और उस केन्द्रको आप अपने शरीर में ही स्थित पायेंगे। स्वामी विवेकानन्दजीने एक स्थान में लिखा है कि, "मैं व्याख्यान दे रहा हूँ। व्याख्यान देते समय मैं क्या कर रहा हूँ? मैं अपने मन के भीतर एक प्रकार का कम्पन (मौज) उत्पन्न कर रहा हूँ। और मैं इस विषय में जितना कृतकार्य्य होऊँगा, मेरी बातें भी उतनी ही सुखकारी होंगी। तुम्हें मालूम है कि, जिस दिन मैं व्याख्यान देते-देते मग्न हो जाता हूँ, उस दिन मेरे व्याख्यान का प्रभाव भी अधिक पड़ता है।"

जगत् में जितने महापुरुष हो गये हैं वे सब प्राण-जयी

थे। इस प्राण-संयम के बल से वे महाशक्ति-सम्पन्न हो गये थे। वे अपने प्राण में मौज उत्पन्न कर सकते थे और उससे वे जगत् पर प्रभाव डाल सकते थे। उनकी इच्छा के बिना ही उनका प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता था। आत्मोन्नतिका मार्ग सरल बनाना ही योग-विद्या का उद्देश है। जन्म-जन्मान्तरों का चक्र इससे नष्ट होजाता है। वर्षों की उन्नति इस से दिनों और घण्टों में होती है। एकाग्रता का प्रयोजन ही यह है कि, शक्ति-सञ्चय की क्षमता को बढा कर हम थोड़े समय में अपने आत्मा का साक्षात्कार कर सकें। राज-योग एकाग्रता द्वारा आत्म-साक्षात्कार करने का विज्ञान है।

## कुण्डलिनी।

"किसी राजा का एक मन्त्री था। राजा उससे नाराज़ हो गया और एक विशाल दुर्ग के सब से ऊँचे स्थान में उसने उसे बन्द करवा दिया। मन्त्री की स्त्री पतिव्रता थी। उसने रात्रिको पति के पास आकर कहा कि, मैं किस उपाय से आपको मुक्त करा सकती हूँ। मन्त्री ने कहा,—"कल रात्रि को एक लम्बा रस्सा, एक मज़बूत रस्सी, एक बण्डल सूत, थोड़ासा रेशम, एक कीड़ा और थोड़ासा शहद लेती आना।" दूसरे दिन वह पतिकी आज्ञानुसार सब सामान ले आई। तब मन्त्री ने कहा,—"इस कीड़े के साथ रेशमके धागे को

मज़बूती से बाँध करके, एक बूँद शहद उसके सिर पर डाल कर, उसका मुँह ऊपर की ओर करके दुर्ग की दीवार पर छोड़ दो।" उस पतिव्रता ने ऐसाही किया। तब उस कीड़े ने अपनी तीर्थ यात्रा आरम्भ कर दी। सामने से शहद की गन्ध आनेसे कीड़ा उसके लालच से धीरे-धीरे चढ़ता हुआ दुर्ग के सबसे ऊपरी भाग में पहुँच गया। मन्त्री ने उसको पकड़ लिया और उसके साथ रेशम का धागा भी पकड़ लिया। तब उसने फिर अपनी स्त्रीसे उस रेशम के धागे में बण्डल के सूत को बाँध देने को कहा। धीरे-धीरे वह भी उसके हस्तगत हो गया। इसी प्रकार उसके पास रस्सा भी पहुँच गया। अब कोई कठिनता नहीं रही। वह उस रस्से की सहायता से दुर्ग से उतरा और भाग गया।"

यह एक उपाख्यान है। इसमें मानुषी जीवन का एक विचित्र रहस्य छिपा हुआ है। हमारे शरीर में श्वास-प्रश्वास की गति रेशमके धागे की सी है। उसका संयम करने से स्नायुवीय शक्ति-प्रवाह (Nervous Currents) रूपी बण्डली सूत, उसके बाद मनोवृत्ति रूपी रस्सी, और अन्त में प्राण रूपी रस्से को पकड़ा जा सकता है। प्राण को जय करने से प्रकृति पर विजय प्राप्त हो सकती है।

हम अपने शरीर के बारे में बहुत कम जानते हैं। परन्तु जब से चिकित्सा-शास्त्र की उन्नति हो रही है, तब से प्राचीन योगियों के अन्वेषण की सत्यता सब पर प्रकट होती जा रही

है। शरीरका खंभ मेरुदण्ड (Spinal Chord) है। इसके भीतर इड़ा और पिंगला नाम के दो स्नायुवीय शक्ति-प्रवाह हैं और मेरुदण्ड की मज्जाके भीतर सुषुम्ना नाडी अर्थात् एक खाली नली है। इस नलीके नीचेके भाग में कुण्डलिनी शक्ति का पद्म है। वह त्रिकोणाकार है। उस स्थानमें कुण्डलिनी शक्ति सर्पिणी की आकृति की होकर विराजमान है। योगियोंने इसको बहुत महत्त्व दिया है। योग की प्रत्येक शाखा इससे सम्बन्ध रखती है। यह नागिनी के समान है। यह साढे तीन लपेटे दिये हुए नीचेकी ओर मुँह किये सोयी हुई है। जब इसको जगाया जाता है, तब यह शक्ति बडे ज़ोर से उठती है। मानसिक स्तरों का विकाश होता है। योगी को नाना प्रकारके चमत्कार दिखाई देते हैं। बिन्दु में वह समुद्र का अनुभव करता है। यही शक्ति जब मस्तक में जाती है, तब आत्मसाक्षात्कार का आरम्भ होता है।

स्वरोदय-शास्त्र के अनुसार इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना,—ये तीन नाड़ियाँ कुण्डलिनी से उठ कर मस्तक के सहस्र-दल-कमलमें मिलती हैं। इडा बाईं ओर है—और पिङ्गला दाहिनी ओर। कुण्डलिनी शक्ति S इस रूप में बढ़ती हुई मस्तक तक जाती है। बीचमें सुषुम्ना नाम की नाड़ी दौड़ती है। यह भी मुख्य नाड़ी है। जिस समय दोनों स्वर चलते हैं अर्थात दोनों नासिकाके छिद्र खुले रहते हैं, उस समय इस नाड़ी का सम्बन्ध कुण्डलिनी से मस्तक तक साफ़ तौर पर दिखाई देता है।

मूलाधार से आरम्भ करके मस्तक के सहस्र-दल-कमल तक सात चक्र हैं। इन चक्रों को शरीर-शास्त्र के पण्डित (Physiologists) नाड़ी-जाल या प्लेक्सस (Plexus) कहते हैं। प्राचीन तत्ववेत्ता इससे परिचित थे। पैथागोरस और प्लेटोने संकेत किया है कि, नाभिके पास एक ऐसी शक्ति है,जो मस्तककी प्रभुता अर्थात् बुद्धिके प्रकाश को उदराधिक स्वार्थ-रत इन्द्रियों तक पहुँचाती है।

यदि मेरुदण्ड में स्थित सुषुम्ना के भीतर से स्नायु-प्रवाह चालित किया जाय, तो हम को संसार भर का ज्ञान शीघ्र ही प्राप्त हो सकेगा। प्रत्येक चक्रमें आप नाना जगत् भासित देखेंगे। साधारण मनुष्य के भीतर सुषुम्ना नीचे की ओर दक्षिण मुख किये बन्द रहती है। यही नहीं, किन्तु मस्तकसे, अर्थात सहस्र दल कमलसे, जीवन-तत्वको यह सर्पनी पीती जाती है, जिस से मनुष्य की अवस्था नित्य घटती जाती है। योगियों की सन्तान सदा दीर्घायु होगी, परन्तु वर्षों से हमारे देश से योग-साधन का लोप हो गया है। वंश-परम्परा (Heredity) से हम सांसारिक हो गये हैं और इस अद्भुत वीर-तेज से हम सब वञ्चित हैं।

अस्तु कुण्डलिनी को जगाना या चैतन्य करना ही तत्वज्ञान, ज्ञानातीत अनुभूति और आत्मानुभूति प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है। कुण्डलिनी को चैतन्य करनेके बहुत

किसीकी कुण्डलिनी भगवत्-प्रेम से चैतन्य हो

किसी को सिद्ध महापुरुषों की कृपा से, जैसा कि स्वामी विवेकानन्दजी के साथ हुआ, और किसी को सूक्ष्म विचार व साधन के द्वारा होती है। जहाँ अलौकिक शक्ति या ज्ञान का विकास देखा जाय वहाँ समझना चाहिये कि, किसी न किसी प्रकार से कुण्डलिनी की शक्ति सुषुम्ना के भीतर चली गई है। कभी-कभी हम ऐसी अलौकिक घटनायें देखते हैं, जिनके होनेका कारण हम नहीं जानते, किन्तु अपरोक्ष में कुण्डलिनी की शक्ति किसी तरह सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है। जिसने इसका साधन किया है, वह प्रकृति के रहस्य से परिचित हो गया है। यही राजयोग का अन्तिम उद्देश है और राजयोग ही प्रकृतिधर्मविज्ञान है। यह समस्त उपासना, समस्त प्रार्थना, विविध प्रकार की साधन-पद्धति और नाना प्रकार की अलौकिक घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या है।

# प्राणायामका साधन ।

प्राणायाम का आशय प्राणवायु के अभ्यास से है। इस संसार की उत्पत्ति 'प्राण' शक्ति से हुई है। वही प्राण हमारे शरीर में है। इस साधन के अनेकानेक लाभ हैं। जिस प्रकार घी से शरीर को शक्ति मिलती है, उसी प्रकार प्राणायाम से रक्त शुद्ध होता है और सदा के लिये आरोग्यता प्राप्त होती है। नेत्रों की रोशनी तेज़ बनी रहती है। सोना जिस प्रकार तपाने से लाल हो जाता है, इसी प्रकार योगाभ्यास से या प्राणायाम के साधन से शरीर को निर्मलता और मन को एकाग्रता प्राप्त होती है। जब ऐसा हुआ, तो अभ्यासी अपने आप को पहचानने लगता है और उसे हर जगह अपनी ही आत्मा दिखाई देती है। प्रत्येक सांसारिक वस्तु उसका ही पता देती है। दिल का मैल प्राणायाम से दूर होता है। लाखों जन्मों के सङ्कल्प, विचार, पाप-कर्म इत्यादि नष्ट होने लगते हैं। इनके बीज तक नष्ट हो जाते है। तदुपरान्त परमात्म-स्वरूपमें स्थिति होती है। इसी से शिव, राम, कृष्ण, ब्रह्मादिक देवताओं का नाम बाक़ी है। वे स्वयं समाधिस्थ अथवा ब्रह्मलीन हो चुके हैं। प्राणायाम का

अभ्यासी इसप्रकार अपने इच्छित स्थान पर पहुँच जाता है।

शरीर में कुल दश वायु हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, कूर्म, कर्कल, नाग, देवदत्त और धनञ्जय। इन सब की कुञ्जी या अधिष्ठाता प्राणवायु है। श्वास के आने-जाने का काम इसी के सहारे चल रहा है। हृदय इसका स्थान है और सूर्य्य देवता है। अपान वायु का स्थान मूलाधार है। समान वायु नाभि में रहता है। देवता इसका सरस्वती है; कइयोंके कथनानुसार विष्णु है। काम इसका सारे शरीर में रसादिक पहुँचाना है।

इसी कमल से शक्ति मौज पर आती है। कुण्डलिनी के जगाने में इस से बड़ी सहायता मिलती है। नीति पवन का वास यहीं पर है। उदान वायु का स्थान कण्ठ है। त्रिकुटी तक इस वायु का राज्य है। देवता इसका चन्द्रमा है। काम इसका त्रिकुटी से शक्ति लेकर समान वायु तक पहुँचाना है। 'स्वरोदय' में इड़ा पिङ्गला को मिला कर सुषुम्ना इसी मार्ग से प्राण दसवें द्वारपर चढ़ाती है। 'सोऽहम्' साधन में जब 'सुरत' स्थित होती है—तब यही अपना काम करती है। सिर नीचे व शरीर को उलटा कर जितने साधन किये जाते हैं, उन सब में इसकी सहायता ली जाती है। व्यान र, सारे शरीर में है और देवता इसका पवन है। कूर्म निवास-स्थान नेत्र है, देवता इसका प्रकाश है। कर्कल के दे

में रहती है और देवता इसका मन्दाग्नि है। नागवायु का स्थान गला है—देवता शेष है। कै, डकारादि का लाना इसका काम है। देवदत्त हृदय के पास रहती है, देवता इसका कामदेव है। धनञ्जय का स्थान शरीर है; देवता इसका ईश्वर है। मृत्युके पश्चात् शरीर को फुला देना, और शरीर से अलग न होना यह इसका काम है। अस्तु।

प्राणवायु की तासीर गर्म है और देवता इसका सूर्य्य है। यह वायु हृदय से उठ कर १८ अंगुल बाहर जाती है। इसमें श्वास को अन्दर ही अन्दर खींचा जाता है और उसे हृदय, मस्तक, तथा समस्त शरीर में फैला कर रोका जाता है।

इसके तीन भेद हैं। पूरक, रेचक, कुंभक। श्वास को बाहर से अन्दर लाने को पूरक कहते हैं। रेचक उसी ज़ोर से श्वास के उतारने को कहते हैं, जिस ज़ोर से सांस चढ़ायी गयी थी। इस में बहुत ही धीरे-धीरे सांस चढ़ाने व उतारने की ज़रूरत है।

प्रति दिन सांस कुछ अधिक रोकें। कुम्भक यथाशक्ति वायुके रोकने को कहते है। चित्त को एकाग्र रक्खें, कि किसी तरह का खयाल पैदा न हो। आत्मा के साक्षात्कार में दत्तचित्त रहें। प्रातःकाल ३ बजे रात्रि, अथवा ८ बजे रात्रि का समय इसके लिये उपयुक्त है। प्राणायाम करने के पहले यदि स्नान कर लिया जाय तो

अन्यथा कमसे कम मुँह हाथ तो अवश्य ही धो लेना चाहिये।

प्रथम तीन बार प्राणायाम करे, फिर इस को बढ़ाता जाय। भोजनके पश्चात् दो ढाई घण्टे तक इस साधन को नहीं करना चाहिये। इसके मोटे-मोटे सिद्धान्तों को तो हर जगह लोग जानते हैं, परन्तु भेद और बारीकियाँ लोगों को मालूम नहीं। जिन को मालूम हैं, वे बतलाना नहीं चाहते।

प्राणायाम अस्सी बार तक कर सकते हैं; परन्तु एक-दम से इस साधन को नहीं बढ़ाना चाहिये। एकाग्र होकर यह ध्यान करें कि सूर्य और बिजली से करोड़ गुणा तेज़ हूँ—आनन्दरूप हूँ—चैतन्य हूँ—एक-रस हूँ—सूक्ष्मसे सूक्ष्म हूँ। ऐसा अपना स्वरूप मान कर इस में लीन हो जावे।

प्राणायाम तीन प्रकार का है। कनिष्ठ; मध्यम और उत्तम। कनिष्ठ में पसीना आता है, मध्यम में शरीर काँपता है और उत्तम प्राणायाम में प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रमें घुस कर आत्मद्वार को खटखटाता है। इसके बाद समाधि लग जाती है।

यदि ऐसा करतेहुए, किसी अन्य कारण से मृत्यु भी हो जाय, तो भी सिलसिला बना रहता है और वह किसी योगी, योगिराज या वेदान्ती के घर में जन्म लेता है। उसको उन्नति के अच्छे अवसर मिले रहते हैं। गुरु के मिलने

हो सब काम शीघ्र ही निपट जाता है। यदि पूर्ण योगी न भी मिले, तो भी क्या हर्ज है? अदृश्य हाथों से तुम्हारी उन्नति होगी। योगी की उन्नति को कोई भी नहीं रोक सकता। यदि तुम में योगाभ्यास करने की इच्छा है, तो यही काफी सुबूत है कि तुम्हारे शुभ कर्म उदय हुए हैं। अभ्यासमें एकदम लग जाओ। अवश्य उन्नति होगी।

( २ )

प्राणायाम में 'बन्धों' की भी ज़रूरत पड़ती है। मुख्य बन्ध तीन हैं। ( १ ) मूलबन्ध (२) जालन्धर बन्ध और ( ३ ) उड्डियान बन्ध।

१—मूलबन्ध—पूरक के समय में जब वायु अन्दर को आता है, तब इस बन्ध से काम लिया जाता है। बाईं एडी से मूलाधार व गुदा के बीच के स्थान को दबाते हुए अपान-वायु साथ ही चढ़ानी होती है, परन्तु यह अन्य आसनों के लिये है। सिद्धासन में स्वयं यह भाग दब जाता है और यह आसन ही मूल बन्ध का का काम देता है।

२—जालन्धर बन्ध—यह उस समय लगाया जाता है, जब वायु उत्तम प्राणायाम के द्वारा ब्रह्मरंध्र को चढ़ रहा हो। कण्ठको नीचे करके ठोड़ी को हृदय के बीच टेक कर अन्दर वायु को रोको।

३—उड्डियान बन्ध—वायु के उतारने के समय का यह साधन है। इसमें गुदा को अन्दरको सिकोड़ना और नाभि तथा

सारे शरीर के अन्दर वायु को बाहर निकालते समय पीठ और नाभि को मिलाना होता है, अर्थात् रेचक करते समय नाभि को पीठ की ओर दबाना होता है। पीठ की रीढ़ को Spinal Chord कहते हैं। यहाँ ही कुण्डलिनी स्थित है। नाभि को पीछे मिलाते समय उसके जाग्रत होने में सहायता मिलती है।

प्राणायाम के कई अन्य भेद भी हैं, परन्तु उनको यहाँ पर लिखना इस समय हम उचित नहीं समझते। बहुतसे शेखचिल्ली-प्रकृति वाले इन साधनो को बिना किये ही आगे के साधन पर कूद जाते है और अन्त में हानि उठा, इस विद्या को भी बदनाम करते हैं।

## प्रत्याहार।

योग का पाँचवाँ अङ्ग प्रत्याहार है। प्राणायाम नियमित समय पर करना, दुःख और सुख को एक समान जानना, अनुभवके विरुद्ध कोई काम न करना, व्यसनों से दूर रहना तथा उनको नाशवान समझना,—ये पांच अङ्ग प्रत्याहारके है।

## धारणा।

सुरत या विचार या सङ्कल्प को किसी तरफ़ लगाने को धारना कहते हैं।

## ध्यान

जब 'सुरत' पूर्ण रीति से जमने लगे और किसी वस्तु में लीन हो जाय तो उसको ध्यान कहते हैं। और जब यही वृत्ति निवस्त रीतिसे सदा एक रस बनी रहे—चाहे—जाग्रता-वस्था में ही क्यों न हो, तब—उसे "समाधि" कहते है। इसका विस्तृत वर्णन और साधन ब्रजयोग के अभ्यासमें दिया गया है।

षष्ठ खण्ड

ओं
ओंतत् सत्

# छठा अध्याय

## वज्रयोग और षटचक्र वेधन।

### वज्रयोग।
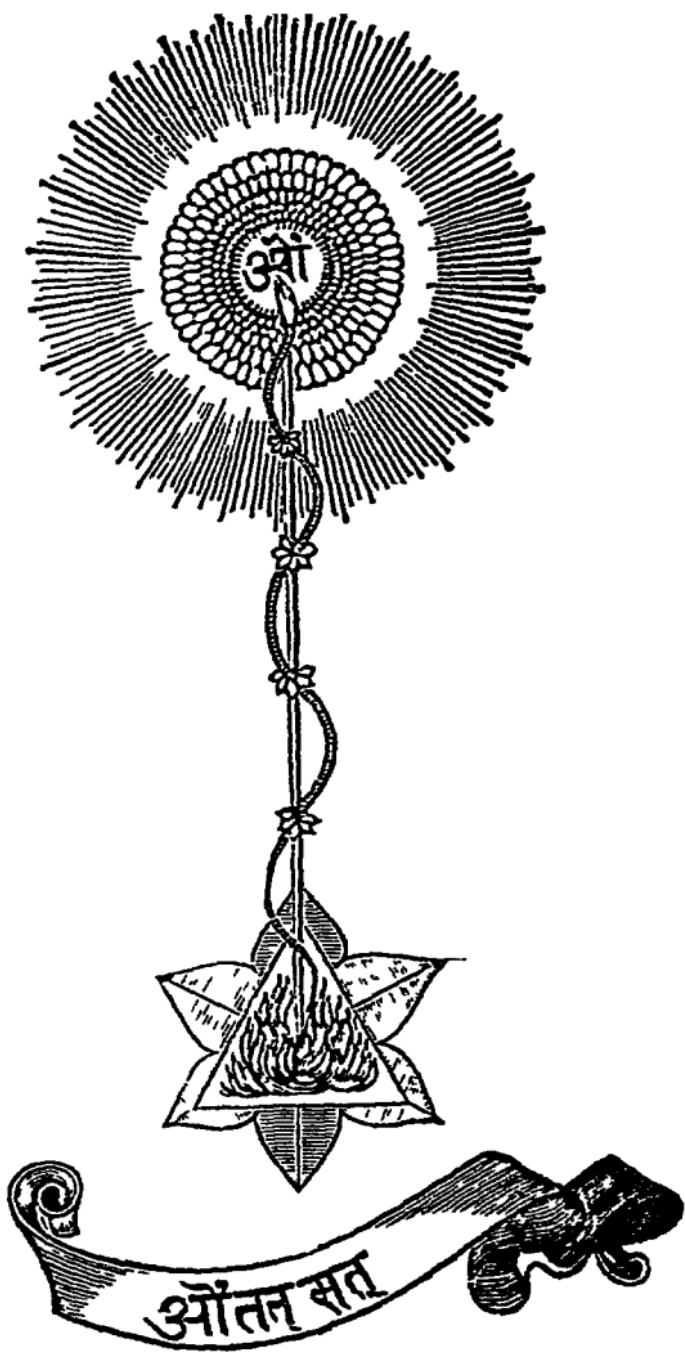
प्राणायाम करने के पश्चात् इस साधन का करना बहुत ज़रूरी है। इसमें प्राणों को मूलाधार-चक्र तक ले जाकर, वहाँ बायें तरफ़ से वायु को चक्कर देना होता है। कुछ समय में वायु उठने लगती है। इसको अपान वायु कहते हैं। जब यह वायु उठने लगे, तो नाभि-कमल में भी इसी प्रकार प्राण-वायु को ले जाकर "नित्य-नारायण" यह ध्वनि उठानी पड़ती है। यहाँ भी वायु को बाईं ओर से प्रवाहित करना पड़ता है। साथ में मूलाधार से उठी हुई अपान वायु भी सहायता देती है। इस प्रकारसे योगी को नाना प्रकार के दृश्य

दिखाई पड़ते हैं। इसके बाद षट्चक्रों के साधन को करना चाहिये।

चक्र सात हैं:—(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान (३) मणिपूरक (४) अनाहत (५) विशुद्ध (६) आज्ञा (७) सहस्र-दल-पद्म।

## प्रथम मास का साधन।

मूलाधार-चक्र तक योगी अपने प्राणों को ले जाय और जब देखे कि शक्ति स्वरूपिणी कुण्डलिनी का दर्शन होने लगा है, तब वहाँ "सोऽहं" का जाप करे। अर्थ सहित स्वाँस लेते समय "सो" कहे, और उतारते समय "हम" कहे। सो शब्द भी मूलाधार कमल से उठना चाहिये और 'हम' भी वहीं से। "सः" का अर्थ है वह आत्मा सत्त-चित्त-आनन्द 'अहम्' अर्थात् मैं हूँ। जाप इस प्रकार हो कि, बाहरी कान इसे सुन न सकें। इस प्रकार प्रातःकाल और सायंकाल को एक-एक घण्टा इस का जाप करें। पहले-पहल निश्चित स्थान से ध्वनि उठाने में कठिनाई मालूम होगी; परन्तु शीघ्र ही यह विघ्न भी दूर हो जायगा। दिन-भर इसका ध्यान रहे कि, मैं सब का आदि कारण आत्मा हूँ। साधन के बीच किसी से बोलना मना है। बहुत कम बोले। प्रथम मास में यही साधन करना होगा। इसमें मूलाधार-चक्र को खोलना होगा। जब चक्र

चित्र १

(१) Corobial Plexus
शून्यचक्र (सहस्रदल कमल)
(२) Modullary आज्ञाचक्र
(३) Caroted विशुद्ध चक्र
(४) अनाहतचक्र Cardiac
(५) मणिपूरकचक्र Epigastric
(६) स्वाधिष्ठानचक्र
(Hypogastric)
(७) Pelvic मूलाधारचक्र
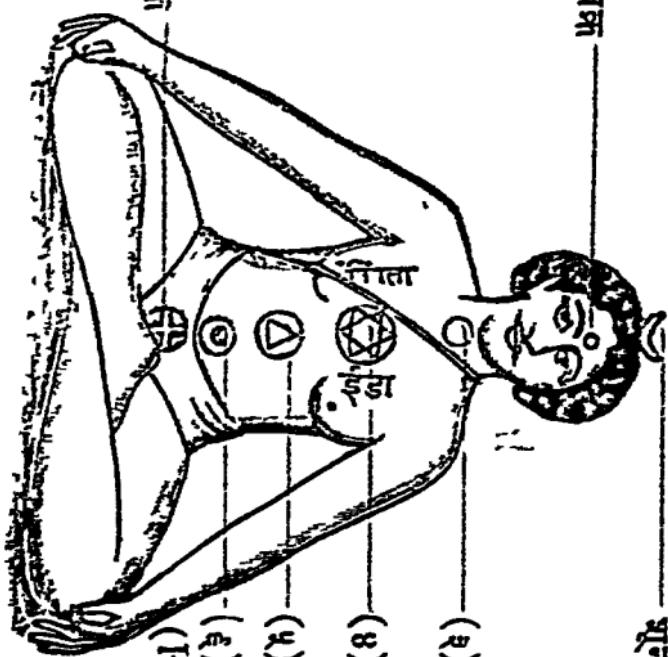
खुलने लगता है, तब चींटी की झुन-झुनाहट के समान आहट मालूम होती है।

दूसरे मास में स्वाधिष्ठान-चक्र का साधन करना होता है। यह चक्र नाभि और मूलाधार-चक्र के बीच में है। तीसरे मास में मूलाधार और स्वाधिष्ठान की शक्ति को नाभि-कमल की शक्ति से मिलाना होगा।

अभ्यास करते-करते मानसिक बल बढ जाता है। प्रातः-काल उठकर कुण्डलिनी को ज़रा ध्यानपूर्व्वक देख, यह सङ्कल्प उठाओ कि, मूलाधार की समस्त शक्ति श्वेत धुएँ के रूप में उठ कर और अपने साथ स्वाधिष्ठान-चक्र की शक्ति को लेती हुई—नाभि-कमल में आती है और यहाँ नाभि कमल को जगाने में सहायता देती है। यहाँ भी नाभि-कमल से 'सोऽहम्' का विधिपूर्वक जाप उठाओ। ऐसे ही चौथे मास में ज्योतिःस्वरूप सोऽहम् का जाप हृदय-कमल पर करो। पाँचवें मास में कण्ठ पर, छठे मास में त्रिकुटी पर और सातवें मास में गगन-मण्डल में इसका जाप करो। एक दिन आप से आप समाधि लग जायगी और फिर जितने घण्टे की समाधि की इच्छा करोगे, उतने घण्टे बराबर रहेगी। यदि बिना इच्छा किये समाधि लगाओगे, तो ब्रह्मपद प्राप्त होगा और समाधि सदा बनी रहेगी।

चार कमल दल मूल विराजे चारों वाणी धाई है।
षोडन मय भव रचित विधाता षट्दल स्वाधिष्ठाई है॥

अव ते रक्षो हरिजन पालें-नाभि दश दल आई है।
अव-भव रहित करत शिव शंभू-दल बारह हृदयाई है॥
अव में रहती शक्ति विशुद्धा—सोलह दल कंठाई है।
अव सूरज वं चन्द्रा रंग्री—तीनो नाडि सुहाई है॥
त्रिकुटी घाट में भई त्रिवेनी द्वय दल भँवर समाई है।
भँवर गुफ़ा कर यह दरवाज़ा आज्ञा चक्र सदाई है।
सहस कमल दल गुरु विराजें देते पन्थ चलाई है।
जो चलि जायें ब्रह्म तब दर्से, भँवर नाथ चिरधाई है॥

इस साधन में जितना कष्ट उठावेंगे—अर्थात् जितना समय व्यतीत करेंगे, उतनी ही शीघ्र उन्नति होगी। इन साधनोंके नियमित साधनसे योगी मृत्युको जीत लेता है।

## त्रिकुटी ध्यान।

प्रयाणकालेमनसाऽचलेन
भक्तायुक्तोयोगबलेनचैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्यसम्यक्
सतपरं पुरुषमुपैतिदिव्यम्॥ [गीता]

यह साधन सवेरे चार बजे किया जाता है। इसके वास्ते एक अलग कमरा होना चाहिये जो कि सुगन्धित वस्तुओंसे भरा हो। जब सब तरह से तय्यार हो जाओ, तो एक पवित्र

नरम गद्दी लेकर आसन जमा कर और अपने नेत्र मूँदकर उस स्थानको देखो, जहाँ शिवजीका तीसरा नेत्र हिन्दू-शास्त्रों में माना गया है। यह स्थान ललाट में है, जहाँ पर हिन्दू लोग तिलक लगाते हैं। नेत्र मूँद कर पहले-पहल बहुत समय तक नीली ही ज्योति दिखाई देगी। उस ज्योति को ध्यानपूर्व्वक-देखते ही एकदम परदा उलट जायगा और एक अद्भुत आनन्द और शान्ति प्राप्त होगी। तुम्हारा मन यही चाहेगा कि सदैव इसी की ओर ध्यान लगाये रहें। यदि कोई तुम्हारे साधन में विघ्न डालेगा तो, तुम उसे शत्रुसम समझोगे और कहोगे कि हाय! तुमने ग़ज़ब किया कि हमको ब्रह्मानन्द से पाप-सागर में खींच लाये।

अँधेरे में जब नेत्र पर उँगली लगती है, तो एक ज्योति दिखाई देती है, यह वही ज्योति है। अन्तमें जब यही ज्योति श्वेत रङ्ग में पलटा खाने लगे, तब तुम जानो कि उन्नति के द्वार पर हम पहुँच गये हैं, परदा उठने वाला है, बहुत शीघ्र ही ब्रह्म-ज्योति का दर्शन होगा, बुद्धि दिन-दिन बढ़ती जायगी और मुँहकी कान्ति दिन दूनी होगी।

राधास्वामी-मतवाले इसी ज्योतिके उपासक हैं। पहले-पहल वे राधास्वामी की मूर्त्ति का ध्यान करते हैं, जो हूबहू स्थूल रूप में सामने आ जाती है। पीछे त्रिकुटी ध्यान का साधन करते हैं। धीरे-धीरे परदा उठता जाता है। यदि कुछ भी करोगे तो कहोगे कि हमने क्या लिखा है।

---

स्वाधिस्थान चक्र

गुदाके ऊपर

वं

यं

ब्रह्मा

सर्वशरीरमें

व्यान

जाप ६०००

आज्ञा चक्र
दोनों भौंवों के मध्य में
हं
गुरु
क्षं
जप १०००

मणिपूरक चक्र
नाभि में
विष्णु
समान वायु
डं
ढं
णं
तं
थं
दं
धं
नं
पं
फं
जप ६०००

अनाहार
चक्र
हृदयमें
सदाशिव
प्राण वायु
जप
६०००

ब्रह्मरन्ध्र
चक्र
ब्रह्माण्डमें
परमात्मा
सहस्त्र दल
जप
१०००

मूलाधार चक्र
लिंग गुदाके ऊपर
वं
शं
गणेशजी
अपान वायू
सं
खं
जप ६००
अजपा जाप
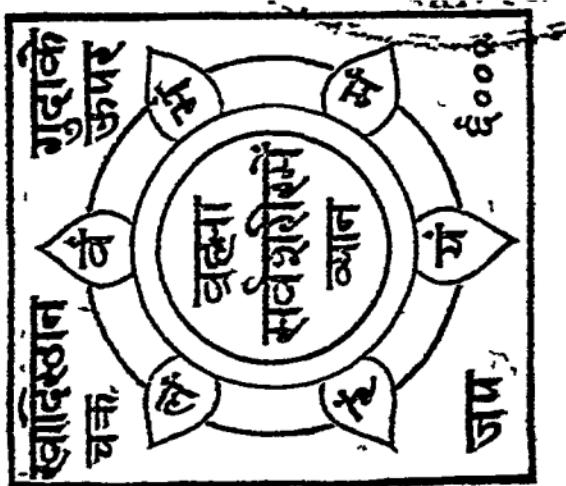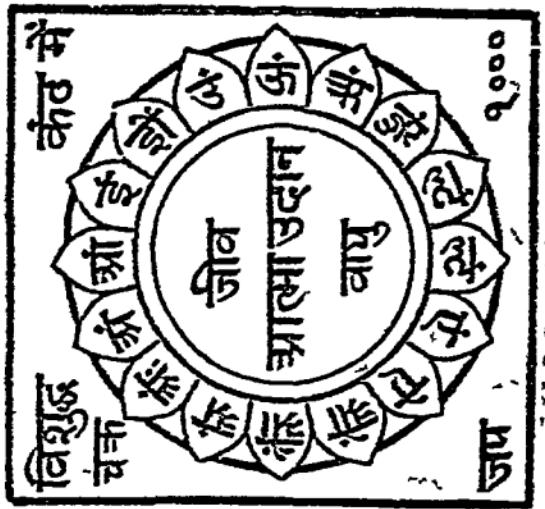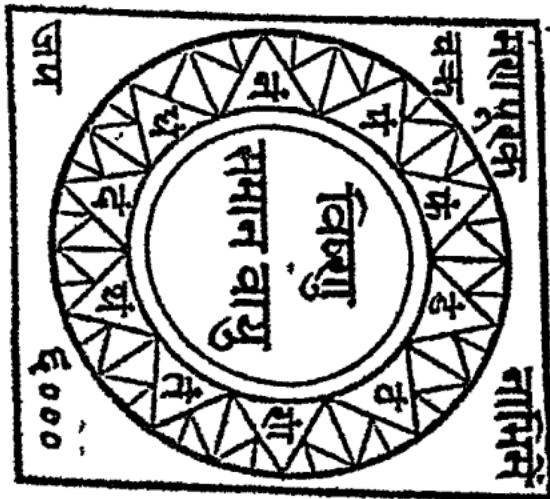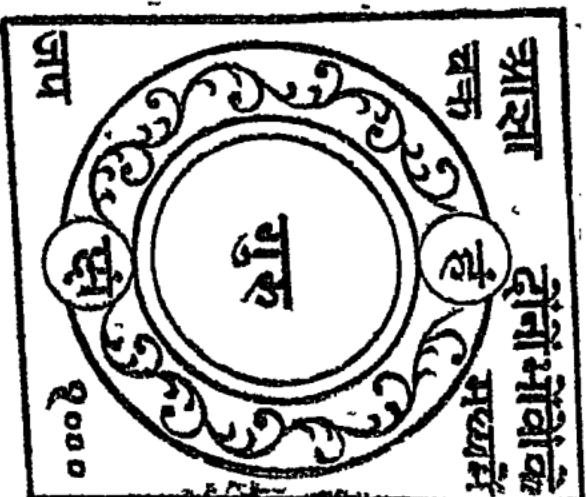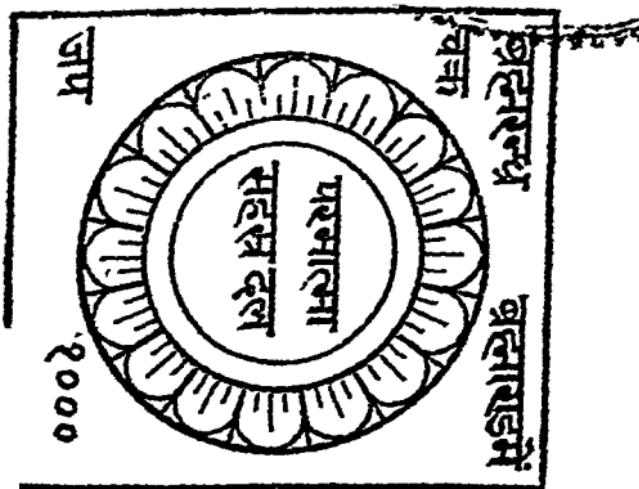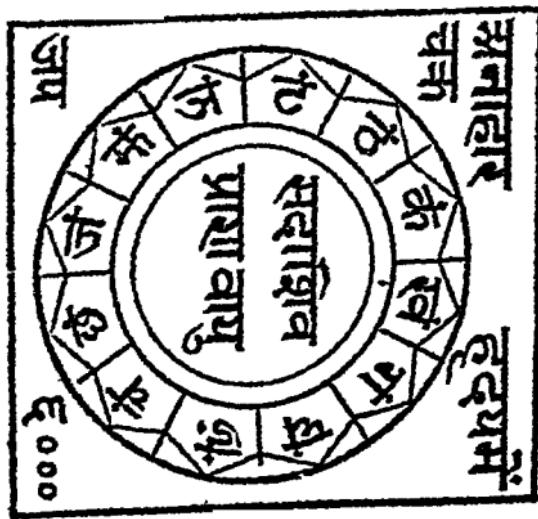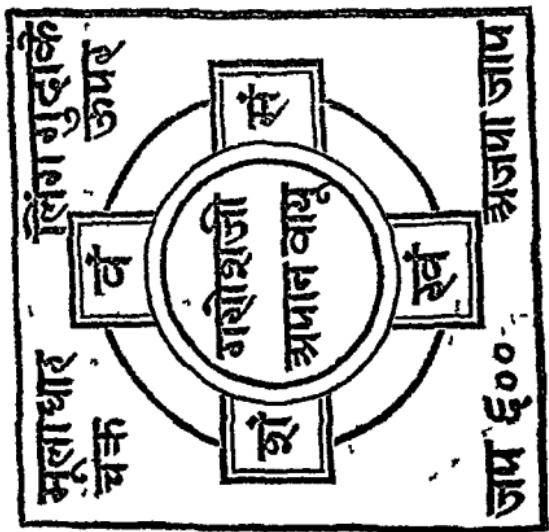
सप्तम खण्ड

# सातवाँ खण्ड

## सोऽहम् ।

टेक—

अनुभव स्वरूप निजरूप लखा
जिन सोऽहम्-सोऽहम् रटा रटा।
अक्षय धन निर्भय मिल जावे
तृष्णा कबहुँ पास न आवे,
कर सन्तोष बैठ रह घर में
मत बाहर फिर उठा-उठा।
जीवनमुक्त सुख जो तू चाहे,
निर्भय और क्या जतन बतावे।
ब्रह्मानन्द से पूरण होजा,
विषय-आनन्द को घटा-घटा।

राग अरु द्वेष नष्ट हो जावे,

चहुँ दिशि एकहि भाव दिखावे।

निर्भय रहो निश्चय यह राखो

दृष्टि दृश्य से हटा-हटा।

नाम रूप गुणने है लीना

सत् चित् आनन्द भाव हमारो।

माखन-माखन खालो निर्भय

छाँड़ि चलो तुम मठा मठा।

# सोऽहं-हंसः-सो।

योगी ज्यों-ज्यों जिज्ञासु के समझने की शक्ति मालूम कर लेता है कि, सुनने वा समझने के साथ उसे अपना स्वरूप भी दिखाई दे और उसमें लीन होता जाय, त्यों-त्यों सोहम् की साधना शनैः शनैः बतलाता है। सोहं और हंसः एक ही बात है, व्याकरण की सन्धि से शब्द और का और बन गया है, दोनों का अर्थ और तासीर एक ही है। कोई सोहं का जाप करते हैं, कोई हंसः का और "सो"जो अन्त की बात है उसका भेद श्रुति ने भी छिपा रक्खा है। उसका बतलाना गुरु पर छोड़ दिया गया है, कारण कि मनुष्य जो कुछ देखता है वह उसके ही विचार का फल है, जैसा भीतर बीज हो वैसा सामने वृक्ष की तरह सामान दिखाई पड़ता है। ज्यों-ज्यों भीतर शुद्धि होती जाती है, बाहर भी सब शुद्ध ही नज़र आने लगता है। जब तक दिल में मान रहा है कि अमुक मेरा शत्रु है तब तक यह बीज दूसरे को उसका शत्रु बना रहा है।

जिस प्रकार दियासलाई डब्बी पर रगड़नेसे सुलग जाती है, उसी प्रकार अन्दर का बीज सामने अपने स्वरूप पर तासीर

डाल कर वहाँ रगड़ पैदा करता है और वहाँ से असर फिर उठकर इधर आता है तथा दोनों ओर से ऐसी तरङ्गों के होने के कारण बढ़ता जाता है। यदि दियासलाई को पानी में भिगो दिया जाय या मसाला हटा दिया जाय तो फिर अग्नि पैदा होकर उसको न जला सकेगी। तुम इस सोऽहं के विषय के पढ़ने से पहले, यदि हज़ार शत्रु मान रहे हो तो एकदम इस सङ्कल्प को उड़ा दो। कभी भी, एक पल भी, किसी प्रकार की शत्रु भाव-उत्पादक लहर या सङ्कल्प अन्दर न जाने दो। इससे उधर भी कोई बुरा विचार तुम्हारे बारे में न पैदा होगा। तुम अटल विश्वास से इधर स्थित रहो, यहाँ तक कि इस सङ्कल्प के त्याग के विचार तक को भूल जाओ। जब ऐसा होगा, तब इस सङ्कल्प का बीज नाश हुआ जानना। इससे प्रकट यह करना कि योगीजनों का सिद्धान्त यह है कि जब तक मुक्ति या ईश्वर-प्राप्ति का ध्यान है, तब तक द्वैतभाव और कुछ कसर शेष है। जब सच्चिदानन्द-भाव प्राप्त हुआ, आपसे आप मौन-दशा होती है।

सोऽहं की साधना चाहे विधिपूर्वक की गई हो या और किसी गुप्त विधि से इसका असर हो चुका हो, जो आपको मालूम न हुआ हो, या पहले समय का कुछ साधा हुआ हो तब "सो" इस पद की दशा समझ में आ सकती है। इसे समझते ही जिज्ञासु अपने आप में लीन हो जाता है।

सोऽहम् के साधन में पैर रखते ही संसारी दुःख, हर प्रकार

की आफ़त बला सब दूर हो जाती हैं और आत्मानन्द-पद प्राप्त होने लगता है।

१ अभ्यास से योगी अपने को पाता है। अन्दरूनी और बाहरी दोनों प्रकार के सङ्कल्प और इच्छायें तथा कर्म करने की शक्ति ये सब उसके वश में होती जाती है और मन सब कामों से विरक्त होता जाता है।

प्रथम जिज्ञासु को इस तरह इस साधन का अभ्यास करना चाहिये कि क्षेम आसन लगा कर बैठे, डर व खुशी को मन से दूर करे। क्षेम का अर्थ भरोसा है, अपने पर आप भरोसा हो। "सो"—का अर्थ 'सो यह स्वरूप' अर्थात् 'सब कुछ' (सत्‌चित् आनन्द) और "हं" अर्थात् मैं, इस सोहं के अर्थ का ध्यान करना होता है। अभ्यासी सवेरे शाम या रात को जब-जब समय मिले, एकान्त स्थान में चुपचाप क्षेम आसन लगा कर दोनों आँखों को टकटकी अपनी नाक की नोंक पर बाँधे और स्वाँस धीरे-धीरे अन्दर खींचे तब "सो" कहे और बाहर निकाले तो "हम्" कहे। इस साधन को बढ़ाता जाय। आँख न झपके। सब कुछ मैं ही हूँ, इसका जाप करे।

"एक अजपा जाप होता सोऽहं इस का नाम है।
रत्न यह अनमोल होता बे यतन सुदाम है॥
इक्कीस हज़ार और छैसौ बारी रातदिन का जाप हो।
योगी उचारे समझ कर तो जगत् में परताप हो॥

मुँह को बन्द कर आँख मूँदे कान को भी बन्द कर।
लेवे स्वासा "सो" कहे बाहर निकाले "हम" कहे॥
तीनों कालों का ज्ञान हो और मन पावे हो वशी।
है यह साधन ऐसा स्वामी मिलती इससे शान्ती॥

इधर ही ध्यान रक्खे। कभी-कभी यह शब्द अनुभव से उच्चारण हो जाता है कि मेरा मन दुःखी है, शरीर कमज़ोर है, दर्द करता है इत्यादि इससे सिद्ध हुआ कि शरीर और मनसे परे कोई जाति विशेष है, सोऽहं का वही स्वरूप है और इसी स्वरूप के सूक्ष्म तत्त्वको तुम इस उपासना के साथ नाक की नोंक पर देखोगे। (अध्याय ६ श्लोक १३—१४) गीता में नासाग्र साधन श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् योगिराज ने कहा है। परन्तु न कोई गीता का अर्थ समझता है, न साधन करता है, इसीलिये अपनी जाति की विद्या गैर जाति की विद्या बन गई है।

ज्यों अलिफ़ का लाम के अन्दर मकाँ।
इस तरह गुम हो तो हो जावे अयाँ॥
आब जो जब बहर में जाकर मिला।
फिर भला दरिया में उसका क्या पता॥
बक्र्र अरफ़ाँ से हुआ जो आशना।
क़तरे क़तरे से उसे हक़ मिल गया।

दूसरी सूरत से गर दरिया बहे।
असल में पानी का पानी ही रहे।

तन है तेरा जैसे पानी का हबाब।
मिट गया फिर क्या रहेगा ग़ैरआब॥

भावार्थ—जिस प्रकार "अलिफ़" "लाम" में है, इसी तरह परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। पानी जब समुद्र में मिल गया, तब उस को कौन अलग कर सकता है और कौन उसको पहचान कर अलग निकाल सकता है? सर्व गुण उस में जल के वर्त्तमान हैं, नदी चाहे जैसी बहे परन्तु पानी वही रहेगा। यह तेरा शरीर पानी के बबूले के समान है, इसके मिटते ही अर्थात् इसका ध्यान मिटते ही सिवा परमात्मशक्ति के क्या रह सकेगा?

मन कर्मों के समूह का नाम है, चिन्तामणि का गुण इसमें पैदा हो गया है। मणि अपने आस-पास की वस्तुओं का गुण, रंग और स्वरूप धारण कर लेता है। यही हाल इस मन का है। वस्तुतः यह कोई वस्तु ही नहीं है, तथापि मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मन ही मनुष्यके मोक्ष और बन्धन का कारण है। इसका स्वभाव ध्यान देने योग्य है, जिधर यह ध्यान लगाता है यह वही होजाता है। यदि संसार में लग जाय तो संसार का स्वरूप हो जाय; आत्मा में लगे तो स्वयं आत्मा हो जाय।

मोर के अण्डे में जिस प्रकार मोर के परों के नक़्श निगार और बीज के अन्दर ज्यों वृक्ष, फूल, फल, पत्ते सब सूक्ष्म रूप में रहते है, इसी तरह मन पर सूक्ष्म चिह्न इकट्ठे हो गये हैं। यदि यह गिरना चाहे तो झट नरक का कीडा बन जाय। उन्नति करना चाहें तो स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। इस अनादिकालके भ्रम के चक्कर से छुटना चाहे, तो छुट सकता है। जिस प्रकार बीज पानी से उगता है और बिना पानी के धरती में ही जल जाता है, इसी प्रकार कर्मों का समूह जो मन है "सोऽहं" की साधना से अपने स्वरूप में लग जाता है और कर्मों के या विचारो के सूक्ष्म परमाणु इससे शक्ति न पाकर गल सड जाते हैं और सङ्कल्प मिट जाते है।

सङ्कल्प के मिटते ही अपना स्वरूप दिखाई देगा। जिस तरह हिलते पानी में मुख दिखाई नहीं पड़ता, ज्योंही पानी ठहरा त्योंही अपना मुख देख लो। वह तो पहले से ही साफ़ है, हम भ्रम से नहीं देख सकते। भ्रम गया आत्मानन्द पा लो, तुम आश्चर्य करोगे कि मैं ही ब्रह्म हूँ, मेरे सिवा कुछ है ही नहीं।

इसके पश्चात् जिज्ञासु "सोऽहं" का उच्चारण करना छोड़ दे। यह अजपा जाप हर स्वाँस के साथ हर वस्तु से हो रहा है। यह अपने आप जारी है। नाक के नथनों से आवाज़ (ध्वनि) इसकी हो रही है। इस को सुनो। यह ब्रह्म की ध्वनि या अपना आपा शब्द है।

"एकोऽहं बहुस्याम" के सङ्कल्प के पश्चात् जब रोग मालूम

हुआ, तो साथ ही दवाई भी बन गई और प्रथम जो भजन में लिखा है कि—

"अनुभव स्वरूप निज रूप लखा
निज सोहं सोहं रटा रटा।"

यह पहले क्लास के जिज्ञासु के लिये है। दूसरे क्लास में औषधि स्वयं बनी बनाई मिलती है, बनानी नहीं पड़ती। इस दशा पर पहुँचते ही मन मर जाता है। इसके मरने को सबसे बढ़कर यही विधि है। अब जब किसी संकल्प का बीज ही नहीं है, तो कोई इधर-उधर का सङ्कल्प कदापि ठहर ही नहीं सकता है।

यहाँ जिज्ञासु कुछ-कुछ अपने को शरीर से अलग देखता है। अब "ब्रह्म सत्य है, और जगत् मिथ्या है" इस विचार को हर समय सामने रक्खो। इसका साधन यहाँ तक बढ़ता जाय कि, यदि साधन छोड़ भी देवे तो दुबारा शुरू करने का शौक़ बराबर लगा रहे कि, तार (सिलसिला) न टूटे। दिन-दिन इसे बढ़ाता भी जावे। "जगत् मिथ्या है" इसका अर्थ यह है कि, अपने स्वरूप के सिवा जो कुछ दिखाई देवे, सब भ्रम है—स्थिर न रहने वाला और नाशवान् है। जो कुछ दिखता है, यह सब मनका भ्रम है।

जिस प्रकार बाँस से अग्नि पैदा होकर बाँस को ही जला देती है, इसी तरह यह मन भी आत्मा से पैदा होकर उसी को

तुच्छ कर देता है। "सोऽहं" इस पाप-केन्द्र को जड़ से नाश करता है। योग-शास्त्र में छः मास यह साधन करने को लिखा है और कहा है कि, कोई स्वाँस व्यर्थ न जावे। हर एक स्वाँस में "सोऽहं" का अनुभव करो। जब सो जाओ, तो इसी ध्यान में सोओ। बराबर वही दिन वाला असर रहेगा।

इस साधन में अभ्यासी जब मन की शुद्धि और नये-नये चमत्कार जैसे रात्रि को उठना, अँधेरे में एक दम उजेला दिखाई देना इत्यादि देखने लगे, तो नीचे लिखी ग्यारह बातों पर अपने को चलने का अभ्यासी बनावे :—

(१)—भोजन की कमी (२) क्रोध और (३) हर प्रकार के सङ्कल्पों से जो संसारी हों दूर रहना (४) आराम, तकलीफ़, भले बुरे सब समय में एक समान समभाव रखना। (५) अपने में इतना दृढ़ रहना कि किसी के कुछ भी कहने पर (भला या बुरा) चेहरे की रंगत न बदले और मन पर कोई असर न पड़े।

(६) स्वर्ग, नरक की और किसी प्रकार के नाशवान् पदार्थ की इच्छा नहीं करना।

(७) किसी भी वस्तु को अपने स्वार्थ के लिये न रखना।

(८) बे-लालच रहना।

(९) महात्माओं की तलाश करना।

(१०) मूर्खों की सङ्गति से और संसारियों की-सङ्गति से अलग रहना।

(११) केवल अपने स्वरूप का दृढ़ ध्यान करना कि, परमात्मा का प्रकाश बाहर-भीतर सर्वत्र झलका करे। अपने ध्यान को दूसरी ओर न लगाना। इन ग्यारह नियमों में दश इन्द्रियों के लिये और एक मन के लिये है। जब इस पदको जिज्ञासु प्राप्त कर ले, तब "सो" की उपासना आरम्भ करे।

ऊख में मधुराई जैसे सेंधे में है नमकापन।
तिलों में है तेल और शीतलता ओले में॥
नीम में है कड़ुआपन जैसे मिर्च में है तीक्ष्णता।
दूध में है घृत और सुगन्ध है बेले में॥
आम में खटाई जैसे अग्नि में है उष्णता।
शोरे में खारापन रूई है बिनौले में॥
काठ में है अग्नि जैसे बीज में है वृक्ष छिपा।
ऐसे राम छिपा प्राणी के चोले में॥

फल में सुगन्ध और दूध में मक्खन दिखाई नहीं देता, परन्तु पुरुषार्थ से अलग हो जाता है और अलग होने पर फिर नहीं मिलता, इसी तरह आत्मा सर्व वस्तुओं में एकसा वर्तमान है। मन, बुद्धि, इन्द्रिय इसकी शक्तिके सहारे हैं। फिर जब मन और बुद्धि और नेत्र इसी से शक्ति पाकर शक्तिवान् बन बैठे हैं, भला उनमें क्या शक्ति है कि इस परमात्मप्रकाश को देखें। वह किसी इन्द्रिय से देखा सुना नहीं जाता। यह विचार "सो" की उपासना से दृढ़ हो जाता है। इसके

आनन्द शान्ति व मौनावस्था होती है। सोऽहं में जो "हं" है वह मन का स्वभाव है। मनसूरने इसमें 'अह' ब्रह्मास्मि' कहा, सूलीपर चढाया गया। जब ब्रह्म है, फिर अपने को ब्रह्म कहलाने को 'या मैं ब्रह्म हूँ' इस वाक्य के उच्चारण करने की क्या ज़रूरत है? साफ़ कमी और कसर पाई जाती है। माया से और मन से सम्बन्ध दिखाई पड़ता है और मालूम होता है कि वर्षों तक भूला रहा और अब कहता है कि, मैं ईश्वर हो गया हूँ अथवा पहले ईश्वर नहीं था।

नाम रङ्ग रूप वहाँ होता है जहाँ बहुतायत हो और उन में भेद करना पडता है। ईश्वर कहने से वह सृष्टि का सङ्कल्प साथ रखता है।

श्रुति यहाँ तक भेद को कह गई। आगेका भेद लिखने में नहीं आ सकता; क्योंकि मिठाईका मज़ा जिसने न चक्खा हो वह लिखने से किस तरह समझ सकता है। इसको वही मनुष्य अनुभव कर सकेगा, जिसने इस मार्ग में उन्नति कर ली है।

अब स्वांस की पावन्दी छोड दो। हर समय हर काम में सः, सः, सः, अर्थ-पूर्वक, कहते जाओ। एक मास ऐसा करने से एक आवाज़ जो हर जगहसे हो रही है, अर्थात् "सः"(वह) की ध्वनि, उसे हर जगह सुनो। उधर ही ध्यानारूढ़ हो जाओ।

अब सुरत साधने का ठीक समय आ गया है। सुरत में चैतन्य और होशियार रहो। यहाँ अपना आपा देखो। यहाँ

बड़ी बुद्धिमानी और फुरती का काम है। कोई भी विचार या सङ्कल्प मन में सिवा "सः" के न उठे। यहाँ सब स्वार्थ-विषयक पदार्थों का त्याग कर दो—

"सो" का अर्थ है "निज स्वरूप" सो, इस स्वरूप, "अजपा जाप" को सुनते-सुनते यह ध्यान करो कि वह तेज जो सूर्य चन्द्रमा और अग्नि में वर्तमान है, वह मेरे तेजःस्वरूप का एक राई मात्र अणु है। और अपने स्वरूप का ध्यान इस तरह बाँधो जैसे गीता में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने कहा है। अपने स्वरूपमें लीन हो जाओ, यही निश्चल समाधि आत्मसाक्षात्कार व जीवन्-मुक्ति की अवस्था है।

# उन्नति का स[illegible] [illegible] ।

(१) जब तक [illegible] काम में पूरे तौरसे मन न लगाया जावे, सफलता [illegible] करना असम्भव है ।

(२) ध्यान पूरे [illegible] से तब तक नहीं लग सकता, जब तक कि मन एकाग्र न हो ।

(३) मन एकाग्र नहीं हो सकता, जब तक किसी साधन द्वारा उसपर जय न पाई जावे ।

(४) साधन विना गुरु के जाना नहीं जाता ।

(५) परन्तु अच्छे गुरु का मिलना हर जगह कठिन है ।

(६) भाग्योदय से यह कमी योगाश्रम ने पूरी कर दी है ।

(७) यदि आप विचारों पर जय रखकर उन से विचित्र विचित्र काम लेना चाहते हैं,

(८) या आप धोखेबाज लोगों के जाल से तंग आकर इ[illegible] विद्या से विश्वास-रहित होगये हैं, या

[illegible] सांसारिक कामों में उन्नति चाहते हैं, या

(१०) इसी शरीर में रहकर आत्मिक चमत्कारों के देखने के उत्सुक हैं—

(११) तो अवश्य ही एक बार मैम्बर बनकर अपनी शुभ इच्छाओं को पूरी करें ;

१२) परन्तु याद रहे कि आप नशेबाज़, हिंसक, जुआरी, रिशवती विचारो के हों तो पत्र मैम्बरी न भेजें ;

१३) क्योंकि ऐसे महापुरुषों का ठिकाना य[illegible] हीं है।

१४) यदि मैम्बर बन गये तो पहले ही [illegible]न से तुम्हारा मन वा विचार तुम्हारे वश में हो जावेगा।

(१५) विचार हाथ जोड़े खड़ा रहेगा।

(१६) अब मन तुम्हारे वश में है, जिधर लगाओ उन्नति ही उन्नति है।

योगके प्रचारार्थ मासिक सहायता १), ॥) अपनी योग्यतानुसार देनी पड़ती है, जिसमें आधी से अधिक व कभी-कभी पूरी से अधिक मैस्मरेजम, हिप्नाटिज़्म योग आदि के यन्त्र व डाक-टिकट व चिट्ठी-पत्री छपाई आदि के रूप में तुमको वापिस मिल जाती है। ग़रीबों को शिक्षा मुफ़्त दी जाती है।

योग की सब शाखायें जैसे राजयोग, हठयोग, मानसिक-योग, प्रेमयोग, आवेशयोग, लययोग आदि की गु

शिक्षा दी जाती है तथा आधुनिक विद्यायें जैसे मैस्मरेजम हिप्नाटिज़्म, स्प्रिचुएलिज़्म आदि को भी शिक्षा दी जाती है इस समय ५००० मेम्बरों को मुफ्त शिक्षा २ मास तक दी जावेगी। केवल डाक-खर्च उनके ज़िम्मे होगा।

पता—मैनेजर योगाश्रम
पोष्ट० हरिपुर, ज़ि० हज़ारा, पंजाब।

गृण्हन् क्रमेण श्रीशैलमल्लिकार्जुनक्षेत्रमागमत्. तत्र चालौकिकसौन्दर्यशालिनीं वनश्रियं तथा कृष्णानदीं वीक्ष्य संजातवैराग्यः श्रीशैलमल्लिकार्जुनं नत्वा तत्रैव वस्तुमियेष. परन्तु रघुनाथपन्तो राजकार्यप्रवीणस्तं रहस्यवदत्—राजन्? इदं संन्यासियोग्यं वैराग्यं राजर्षेस्तव न योग्यं. त्वया हि गोब्राम्हणरक्षार्थं भुवमवतीर्णेन तदेव सम्यगनुष्ठेयं. स्वामिन्? प्रबलेभ्यो दैत्येभ्य इव यवनेभ्योऽस्मान् रक्षितुं त्वदन्यः कोऽपि नास्ति. तत्कर्तव्यपराङ्मुखो मा भूः. भगवान् त्वां चिरायुषं विधाय यवनान् भारतवर्षान्निःसारयत्विति. इदं च महामात्यस्य प्रतिभामयं भाषणमाकर्ण्य प्रकृतिमापन्नः शिवराजो जनक इव तत्र पुण्यानि कर्माणि कृत्वाऽग्रेऽव्रजत्. ततश्च जवेनाग्रे गच्छन् शिवराजः चन्दीनामकं महादुर्गं रुरोध. चकार चात्मवशं. तथैव सर्वं तं प्रदेशं स्वकीयं कृत्वा तत्र स्वप्रतिनिधिं न्यधात्. अथ सकलभारतप्रसिद्धस्वादुसलिलायाः परमरमणीयवनश्रीभूषितायाः कावेर्यास्तीरे कृतनिवासस्ततएव व्यंकोजिराजाय स्वागमनं निवेदयामास. दूतमुखेन तमवदच्च— दिवंगतानां तातपादानां बहूनि वर्षाणि वृत्तानि. तैः संपादितः कृत्स्नो भूविभागो भवद्भिरेव भुज्यते. कदापि मह्यं वार्ताऽपि न प्रेष्यते. तमहं यवनाक्रान्तभूविभागमोचनार्थमत्रागत आयुष्मता द्रष्टव्यः. पश्चाच्च दायव्यवस्थां करिष्याम इति.

व्यंकोजिराजश्च परतंत्रप्रज्ञः शिवराजस्य नियोगमाकर्ण्य मित्रेभ्यः कर्तव्यं पप्रच्छ. तानि च प्रकृतिकुटिलानि बभाषिरे. शिवराश्च

परं लोभी. स च प्रत्यहं नानाभूविभागानाक्रम्याऽपि अजातसंतोषो दायभागयाचनामिषेण युष्माकं राज्यमपहर्तुमिच्छति. वस्तुतस्तु शहाजीराजैः परमपराक्रमैः संतोषिताद्विजापुराधीशाल्लब्धोऽयं भूविभागः. अयं च शिवराजः साम्प्रतं विजापुराधिपेन समं बद्धवैरः. तत् स्वाधिपशत्रवे दायभागयाचनाधिकार एव नास्ति. यदि च बलादिमं विभागं शिवराज आक्रामिष्यति तदा वयमपि कर्णाटकविभागस्थानां राज्ञां साहाय्येन प्रतीकारं करिष्याम इति. निशम्य स्वमित्रमण्डलस्येमं मंत्रं व्यंकोजिराजोऽपि तथैवावर्तत.

अथ शिवराजो गृहकलहमनिष्टं मन्यमानः क्रमेण विजापुराधीशस्य नानादुर्गवरसमलंकृतं महान्तं भूविभागं स्वायत्तमकरोत्.

( ४ )

एवं शिवराजप्रतापं श्रुत्वा भीतेषु कर्णाटकाविभागस्थेषु राजसु तत्साहाय्यलाभे निराशो व्यंकोजिराजः शिवराजदर्शनार्थमागच्छत्. सोऽपि तं सत्कृत्यादरेण प्रेम्णा चावर्तत. एकदा रहसि स्थितः शिवराजो व्यंकोजिराजमित्थमुपादिदेश— भ्रातः ? भवता दुष्टजनमंत्रं निशम्य चतुरो रघुनाथपन्तो दूरीकृतः. यत् खलु पितृचरणैः संपादितं तदेव सम्यक् न परिपाल्यते. दुर्जनसंगतौ सुखं मन्यते. यवनसेवायां परमाभिमानो ध्रियते. तदिदं नः क्षत्रियाणामनुचितं. सकलं भारतवर्षे

खलु यवनैराक्रान्तं. तन्मोचयितुं प्रयतमानस्य मे स्वल्पमपि साहाय्यमकृत्वा प्रत्युत विरोधः क्रियते. तदेतदत्यन्तमसमीचीनं. पौरुषमकृत्वा जीवनमबलानां शोभते नतु पुनः क्षत्रियाणां. यदि त्वमिमं कृत्स्नं दाक्षिणापथं स्वायत्तीकर्तुमिच्छसि तदा सर्वथा त्वामहं साहाय्ययिष्यामिति. व्यंकोजिराजश्च श्रुत्वेममुपदेशं निभृतं तस्थौ. ततः कतिपयदिवसैः शिवराजो व्यंकोजिराजमुदासीनं वीक्ष्य स्वनिवासं गन्तुमनुमुसुदे. सोऽपि किंचिदनुक्त्वा स्वनिवासमगात्. अत्रान्तरे महाराष्ट्रदेशादागतो दूतो दिल्लीश्वरो दाक्षिणापथं जेतुं महता सैन्येन समं स्वयमेवागच्छतीति निवेदयामास. तच्च श्रुत्वा शीघ्रमेव स्वराजधानीं गन्तुकामः शिवराजः कर्णाटकविभागे नूतनं संपादितं भूविभागं परिपालयितुं रघुनाथपन्तं तथा हंबीररावसेनापतिं नियुज्य स्वयं स्वदेशमागन्तुं प्रातिष्ठत. शिवराजं कृतप्रस्थानमाकर्ण्य व्यंकोजिराजस्य मित्राणि तं शिवराजसेनापतिमाक्रम्य पराजेतुं प्रोत्साहयामासुः. सोऽपि तत् समीचीनं मन्यमानः कतिपययवनसैनिकैः समं तां सेनामाचक्राम. रघुनाथपन्तस्तु स्वामिपुत्रोऽयमिति ' मत्वा युद्धं परिहरन् यवनसैनिकानजयत्. व्यंकोजिराजश्च पलायनेनात्मानं जुगोप. रघुनाथपंतप्रेषितेन लेखेनेदं सर्वं वृत्तं विज्ञाय खिन्नः शिवराजः पुनरपि व्यंकोजिराजं पत्रद्वारा परं निरभर्त्सयत्. रघुनाथपन्तं च सावधानेन वर्तितुमादिदेश. व्यकोजिराजश्च ततआरभ्य गृहीतवैराग्यो न पूर्ववद्राज्यकार्येषु मनोऽदात. तद्वैराग्य वीक्ष्य खिन्नया

पत्न्या दीपादेव्या पृष्टः—शिवराजश्च दिल्लीश्वरप्रभृतिभिर्बलाढ्यैर्यवनाधिपैः समं युध्यते न कदापि पराजयं प्राप्नोति. वयं तु केवलेन स्वल्पेनैव तदीयेन बलेन पराजिता मन्दभाग्याः किं कुर्मः. साम्प्रतं स स्वार्धं याचत इति विललाप. तदिदं तदीयं वैराग्यकारणं श्रुत्वा साध्वी दीपादेवी 'महाभागास्ते दिल्लीपतिप्रभृतीन् बलाढ्यान् यवनाधीशानतीत्य वर्तन्ते. तत्रापि तेषामुद्योग एव प्रधानं कारणं. युष्माभिश्च वृथैव तैः समं विरोधः कृतः. असंख्यान् युष्मादृशान् सेवकान् न्यायेन ते परिपालयन्ति. तेषां महाभागानां नायमपराधो यत् पैतृकविभागयाचनं. अहं तु मन्ये ते कृत्स्नं न गृण्हन्तीति तेषामुपकार एव. यतस्ते ज्येष्ठाः. राज्यशासने सर्वथा ज्येष्ठस्यैवाधिकारो न कनिष्टस्येति शास्त्रकाराः समामनन्ति. यूयं च कनिष्ठाः. आस्तामियं शास्त्रकथा. सर्वथा तानाश्रित्य युष्माभिः पराक्रमो विधेयः. ते यथा स्वतातपादानां यशः प्रसारयन्ति तथैव युष्माभिरपि करणीयं. अनेन सुलभेन वैराग्येण को वा लाभ! इति. एवं साध्व्या तया दीपादेव्या स्पष्टं बोधितः स व्यंकोजिराजो विधूय वैराग्यं पुनरपि रघुनाथपन्तानुमत्याऽवर्तत.
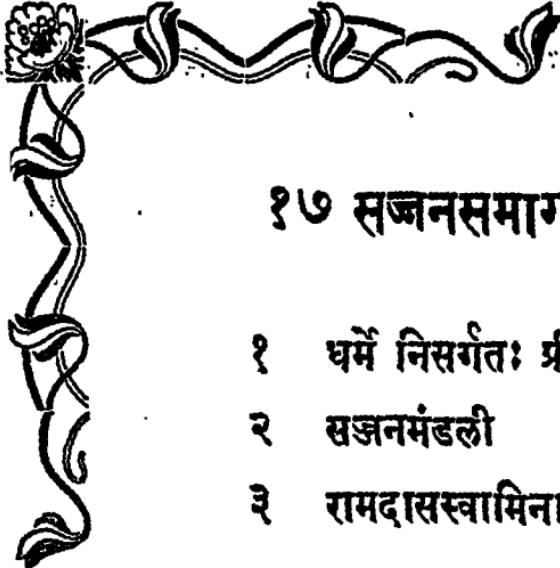
## १७ सज्जनसमागमः

१ धर्मे निसर्गतः प्रीतिः
२ सज्जनमंडली
३ रामदासस्वामिनामुपदेशः

वाचकाः ? अधुना श्रीशिवच्छत्रपतेरेतावत उत्कर्षस्य कारणं किमिति अनेन विषयनिरूपणेन निरूपयितुमिच्छामि. बान्धवाः ? अस्योत्कर्षस्य कारणं शिवराजे वर्तमाना नैसर्गिकी धर्मप्रीतिरेव. धर्मशब्देनेह कस्याऽपि समाजस्य धर्मो नाभिप्रेतः किंतु सर्वेषां तत्तत्समाजधर्माणां प्राणभूतः परोपकारफलकः सदाचारधर्म एव गृह्यते. शिवराजश्च कियान् सदाचार आसीदित्यत्राहमेकमुदाहरणं कथयामि.

एकदा शिवराजः कल्याणविभागं जेतुं स्वामात्यमाबाजिसोनदेवनामानं प्राहिणोत्. सोऽपि तं प्रदेशं स्वायत्तीकृत्य तदधिपस्यान्यत्र स्थितस्य परमलावण्यखानिं भूमिमवतीर्णां तिलोत्तमामिव स्नुषां बन्दीचकार. तां वीक्ष्य विस्मितः साधारणमतिः 'आबाजीसोनदेवः'-इयं खलु स्वामिचरणेभ्यः समर्पणीयेति मन्यमानस्तामादाय राजधा-

रतेभ्यो यवनाधिपेभ्यः सदाचारमिति. सर्वे सभ्यास्तथा सोऽमात्य इदं शिवराजस्य भाषणं निशम्य स्तब्धचित्तवृत्तयस्तं जनकमिव धार्मिकं प्रणम्य तदाज्ञामन्ववर्तन्त.

वाचकाः? किमिदं न लोकोत्तरं! गतास्ते परदारलोलुपा दिल्लीश्वरप्रभृतयो यवनराजास्तथा पुण्यश्लोको जनक इव धर्मरतः शिवराजश्च. तथापि यावच्चन्द्रदिवाकरस्थायि चन्द्रिकाधवलं तदीयं यशोमण्डलं सज्जनानानंदयत्येव.

अनया नैसर्गिक्या धर्मप्रीत्या स आबाल्यादेव दीनदयालुरासीदिति सर्वत्र महाराष्ट्रेतिहासे प्रसिद्धमेव. प्रायो धार्मिका जना आत्मौपम्येन सर्वत्र वर्तमाना दयालव एव भवन्ति.

( २ )

तामिमां नैसर्गिकीं धर्मप्रीतिं तदीया माता सम्यगवर्धयदिति पूर्वं निरूपितं. यथा मात्रा सा वर्धिता तथैव तदानींतन्या सज्जनमण्डल्याऽपि. क्रूरैर्दुराचाररतैर्यवनैर्भारतवर्षे समाक्रान्ते सर्वे जना ऐहिकं तथा पारलौकिकं फलमलभमाना अत्यन्तमक्लिश्नन्. तत्रैहिकफलस्य स्वास्थ्यलक्षणस्य रक्षणाय यथा शिवराजः प्रादुर्बभूव, तथा पारलौकिकफलस्य मोक्षलक्षणस्य रक्षणार्थं स्थाने स्थाने सर्वत्र भारतवर्षे सज्जनमण्डली प्रकटीबभूव. महारा तु सहस्रशः प्रादु-

भूता इमे सन्त उपदेशद्वारा जनान् कर्तव्यपरायणांश्चक्रुः. केवलं स्वरूपप्रदर्शनार्थं केषांचिन्नामानि उदाहरामि. श्रीपतिः, मुकुंदराजः, नामदेवः, गोराकुंभकारः, एकनाथः, निवृत्तिनाथः, ज्ञानदेवः, तुकारामः. न केवलं ब्राह्मणा एव ते किंतु अन्त्यजाअपि लोकोत्तरभक्त्या जनान् विस्मापयामासुः. एते च स्वयं विरचितैर्ग्रंथरत्नैर्महाराष्ट्रभाषामभूषयन्. तदानींतनेषु सर्वेषु साधुषु श्रीतुकारामाः स्वीयालौकिक्या भक्त्या तथाऽनुपमेन वैराग्येण लोकोत्तरा आसन्. ते च सर्वदैव हरिभजन-तत्पराः सर्वेभ्यो भक्तेभ्यो हरिभक्तिमुपादिशन्. शिवराजश्च तेषां प्रेममयानि हरिकीर्तनानि निशम्य धर्मप्रीतिं परमपोषयत्. स च तानुपदेशदानार्थं प्रार्थयत परन्तु प्रकृत्यैव निस्पृहा राजसांनिध्यत-श्चित्तविक्षेपमाशंकमाना न तत्प्रार्थनां स्वीचक्रुः.

( ३ )

अथ तुकारामसाधुवरानलब्ध्वा निराशः पुनरपि तत्सदृशान् साधुवरानन्वैषयत्. अचिरादेव दूतमुखेन—अस्मद्राज्य एव चाफळदरी-विभागे श्रीरामदासस्वामिनो नाम परमवैराग्यसंपन्नाः साधुवरा निवसन्तीति शुश्राव. विशेषेण जिज्ञासमानः 'जाम्बग्रामे निवसतां सूर्याजिपन्तानामिमे कनिष्ठाः पुत्राः. इमे च टांकळीवनेऽत्युग्रं तप-स्तप्त्वा लब्धसिद्धयः क्रमेण समग्रं भारतवर्षमटित्वा सनातनधर्मस्य दीनां दशामवेक्ष्य दुःखाकुलास्तदुध्दाराय प्रयतन्ते' इति ज्ञातवान्.

शिवराजश्चेदं वृत्तं लब्ध्वा सन्तुष्टस्तान् द्रष्टुमैच्छत्, परन्तु ते रात्रिंदिवं वने वा ग्रामे वा नदीतीरे वा यत्रकुत्रापि पर्यटन्तश्चिरात्तन्मनोरथं नापूरयन्. रामदासस्वामिनां चायं विशेषो यत्तेऽन्यसाधुवत् संसारचिन्तां विहाय केवलं भगवद्भक्तावेवात्मानं नारमयन्त किंतु यवनसंत्रस्तान् जनान्निरीक्ष्य परं खिन्नास्तान्मोचयितुमैच्छन्. अथ शिवराजः श्रीरामदासस्वामिनां दर्शनार्थं रात्रिंदिवं वनाद्वनान्तरं पर्यटन् तानलब्ध्वा खिन्न एकस्मिन् गुरुवासरे महाबलेश्वरतीर्थं गत्वा स्नात्वा ब्राम्हणान् भोजयित्वा श्रीसमर्थचरणदर्शनं विनाऽन्नाग्रहणाय कृतशपथः सुष्वाप. द्वितीये दिने श्रीसमर्थानां पत्रं गृहीत्वा तदीय एव शिष्यः शिवराजं प्रत्यागच्छत्. शिवराजोऽपि प्रमुदितस्तत्पठित्वा शीघ्रमेव चाफळमठं गत्वा तत्र रघुपतिं प्रणम्य श्रीसमर्थानां पुरतो मुकुलितहस्तस्तस्थौ. श्रीसमर्थाश्च तं शिवराजं मूर्तं महाराष्ट्रपराक्रममिव समीक्ष्य सन्तुष्टाः परमप्रीत्या तं सर्वं वृत्तमपृच्छन्. तन्मुखात् सर्वं श्रुत्वा प्रमुदितमानसा भूयः पराक्रमान् विधातुमुत्तेजयामासुः. शिवराजश्चानुग्रहणार्थं प्रार्थयत. श्रीसमर्थाश्च तं योग्यं मन्वाना महामंत्रोपदेशेनानुगृह्य कर्तव्यमित्थमुपादिशन् —राजन्? मानवस्य प्रथमं कर्तव्यं परमात्मभक्तिः. सा च न परमेश्वरसंतोषाय विधेया किंतु तया स्वकल्याणमेव भवति. बलोन्मत्तो मानवः पशुवन्निरर्गलं संसारे वर्तमानः परान् दुःखाकरोति. बालकोऽपि शिक्षकभीत्या स्वकर्तव्यमनुतिष्ठन् सुखी भवति. यथा बालकस्य शिक्षकभीतिरावश्यिकी तथैव

मानवस्य परमेश्वरभीतिः. सर्वज्ञः परमात्मा मदीयानि पापकृत्यानि पश्यन् क्रूरेण दण्डेन दण्डयेदिति मन्वानो मानवः कदापि उन्मत्तो न भवति स्वकर्तव्यदक्षश्च जायते. राजन् ! इह खलु संसारे ते जना विरला ये ईश्वराद्बिभ्यति. प्रायः 'इन्द्रियारामा इन्द्रियसुखलाभेनैव कृतकृत्यतां भावयन्तो जनाः' इहोपलभ्यन्ते. तस्मात्तेषां बलोन्मत्तानां परपीडनैकध्येयानां नीचानां शासनार्थं राजशक्तिरपेक्ष्यते. स एव राजा यः प्रजानां परिपालनेन स्वजीवनं यापयति. अन्ये च यथेच्छं वर्तमानाश्चौरा इव प्रजाभिर्वितीर्णं द्रव्यमुपभुंजाना राजशद्बं दूषयन्ति. यथा च पारलौकिके परमात्मभक्तिरूपे कर्मणि सावधानता तथैव लौकिकेऽपि. नीचाः स्वार्थलोलुपा जना राजानं स्तुवन्तः कर्तव्य-विमुखं विदधति. तत् सावधानेन राज्ञा ते निराकर्तव्याः सज्जनाश्च संग्रहणीयाः. शिवराज ? किं बहुना 'मुख्यं हरिकथाख्यानं । द्वितीयं राजकारणं ॥ तृतीयं सावधानेन । सर्वत्र समवर्तनं' इति नितरां ध्यायन् कर्तव्यं कुरु. भगवान् सीतापतिस्त्वां चिरंजीविनं विधाय सनातनधर्मं रक्षतु इति.

शिवराजश्चेममममृतोपमं सदुपदेशमाकर्ण्य सन्तुष्टः सदैव साव-धानेन वर्तमानः प्रभूतानि परोपकारकार्याण्यकरोत्.

# १८ उपसंहारः

१ पश्चाद्राज्यव्यवस्थाविधानं.
२ स्वर्गवासः
३ गुणदोषविवेचनम्.

(१)

एवं, सततं विजयमानः श्रीशिवराजः परोपकारकार्याणि प्रतिदिनं कुर्वाणः परमुत्कर्षं प्राप. एकदा स स्वराजधानीमधिवसानो गूढचारमुखेन दिल्लीश्वरः स्वशासनार्थं दक्षिणापथनियुक्ताय प्रान्ताध्यक्षाय प्रभूतं धनं प्रेषयति ' इति शुश्राव. तदानीमेव स्वकीयं प्रजविसादिमण्डलमादाय निर्गतोऽकस्मात् मार्गे एव तान् कोशवाहकानाक्रम्य सर्वान् कोशानात्मसात्कृत्वा महत्या त्वरया राजधानीमायात्. अनेन दुःसहेन परिश्रमेणोरसि संजातवेदनो ज्वरितोऽभूत्. तं च ज्वरमनवतरन्तं वीक्ष्य भीताः सर्वे सेवकाः कुशलान् वैद्यानाहूय चिकित्सामारभन्त. शिवराजश्च स्वसेनापतिं तथा स्वस्य प्रधानामात्यं शीघ्रमेव दिल्लीश्वरराज्ये पराक्रामन्तं मनसिकृत्वा स्वावस्थां गोपयन् तौ स्वदेशमागन्तुमाज्ञापयामास.

अथ तौ विजयीभूय समागतौ समीक्ष्य सन्तुष्टः शिवराजः स्वस्य चरमं समयं समुपस्थितं जानन् स्वराज्यव्यवस्थां चिकीर्षुः सर्वानमात्यांस्तथा सेनानायकांश्चाहूय जगाद-सुहृदः ! अयं हि ज्वरो मे चरमो दृश्यते. अतऊर्ध्वमहं न भविष्यामीति निश्चितकल्पं. नात्र शोकस्यावसरः. यो हि जातस्तेनावश्यं परलोको द्रष्टव्य एव. यदिदं युष्माकं साहाय्येन महत् स्वराज्यं संपादितं तस्य साम्प्रतं चिन्ता करणीया. यच्च मम पैतृकं चत्वारिंशत्सहस्रमुद्रायं राज्यमासीत्तद्वर्धयित्वा कोटिमुद्रायं कृतमित्यत्र प्रधानं जगदीशकृपैव कारणं. अस्य कृत्स्नस्य राज्यस्य पालकः समीचीनः पुत्रः कोऽपि नास्तीति दूयते मे मनः. ज्येष्ठः संभाजिः क्रूरः परस्त्रीगामी शीघ्रकोपी राजपदानर्हः. कनिष्ठो राजारामश्च समीचीनगुणोऽपि अद्यापि वयसा बालः. दिल्लीश्वरस्तु मदीयमन्तकालं कालइव प्रतीक्षमाणः पश्चादत्रागत्य कृत्स्नं राज्यमाक्रम्य पुनरपि न आर्याणां कन्यका बलाद्दासीकरिष्यति. साम्प्रतं युष्माकं प्रतापतेजसाऽभिभूता विजापुराधीशप्रभृतयः पुनरपि तं साहाय्ययिष्यन्ति. तदस्मिन् भाविन्यनर्थे युष्माभिरैकमत्येन वर्तनीयं. संभाजिं पूर्ववत् प्रतिबंधे निधाय राजारामं राज्याधिपं विधाय सर्वैरपि स्वकर्माणि कर्तव्यानि. न परस्परं कलहः करणीयः. अन्तःकलहो न कदापि श्रेयकरः. प्रत्युत सर्वनाशकरः. परस्परं कलहायमानान्नो वीक्ष्य धूर्ता यवना अत्रागत्य स्वपादान् प्रासारयन्. तद्यद्यवशिष्टं मदीयं प्रेम युष्मासु, किंवा युष्मत्पूर्वजानामार्याणां तेजो

वा, स्वधर्मश्रद्धा वा, स्वभगिनीपातिव्रत्यभंगभीर्वा, अनाथधेनुप्राणरक्षणेच्छा वा, विप्रपालनतत्परता वा, तदा युष्माभिः परस्परं कलहो न करणीयः. संजातस्तु महता प्रयत्नेन परिहरणीय इति वदामि. एषा च मेऽन्तिमा प्रार्थना यथा मम प्राणेभ्योऽपि प्रिया मातृभूमिः पुनरपि यवनानां दासी न भविष्यति तथा सर्वथा भवद्भिर्वर्तनीयमिति.

ते च जनकस्येव धर्मशीलस्य स्वस्वामिनः शिवराजस्येमामाज्ञां परमात्माज्ञामिव सततं निपतद्भिरश्रुजलैरगृण्हन्.

( २ )

एवं सर्वानादिश्य शोकाकुलांस्तान् सान्त्ववचनैः कर्तव्यमुपदिशन् कृतसर्वप्रायश्चित्तविधिर्भागीरथीजलेन विरचितस्नानो भस्मचयेन गात्रं विलिप्य रुद्राक्षमाला बिभ्रदात्मानात्मविवेकेन सकलं समयमनयत्. विद्वद्भ्यो विप्रेभ्यः शतगो गा ददौ. एवमन्यान्यपि पुण्यकर्माणि समाचरत्. अथ संप्राप्ते नेत्रखशास्त्रब्रह्मपरिमितस्य शालिवाहनशकस्य रौद्रनामसंवत्सरस्योत्तरायणे चैत्रमासपूर्णिमायां मध्यान्हकाले शिवराजः परीक्षिदिव समस्तभारतभूमितिलको महाराष्ट्रभूकल्पद्रुमः स्वर्गमारुरोह. तस्मिन् समये महान्त उत्पातास्तथा नक्षत्रपाता अजायन्त. सूर्योऽपि स्वकुलसंभूतस्य पराक्रमशालिनस्तस्य शिवराजस्य स्वर्गगमनेन दुःखित इव न सम्यगभात्. सर्वे सेवकास्तथा प्रजाजनाश्च शोकसागरे न्यमज्जन्.

अथ कथमपि स्वशोकं विधूय सर्वेऽपि अमात्याः शिवराजस्य चरमामाज्ञां स्मरन्तो दुर्गद्वाराणि पिधाय तां वार्तां वहिरप्रकाशयितुं सर्वानाज्ञापयामासुः. ततश्च सर्वैश्वर्येण समं शिवराजदेहमलंकृत्य विधिवत् पंचभूतसाच्चक्रुः. तदानीं पुतळादेवीनाम शिवराजस्य तृतीया पत्नी सहगमनं चक्रे. वाचकाः ! अस्मिन् जननमरणशालिनि संसारे के न जाता मृता वा ? परन्तु शिवराजसदृशः पुण्यश्लोको भूपालो न भावी न भूतः. शिवराजादपि लोकोत्तरशौर्यशालिनो वीरा अत्राजायन्त. शिवराजस्य चापूर्वत्वं न शौर्याधीनं नापि स्वराज्यस्थापनाधीनं किंतु लोकोत्तरनीतिमत्ताधीनं. शिवराजश्च महता प्रयासेनेदृशं महाराज्यं लब्ध्वाऽपि समुपस्थितेऽन्तसमये राज्यवियोगदुःखलेशरहितः साधुरिव मोहेन देहं विससर्ज. ज्येष्ठपुत्रं दुर्वृत्तमवलोक्य तमप्यदण्डयत्. परदारासु मातृवदवर्तत. सज्जनाः ! ये खलु प्रकृत्यैव सात्विकाः साधवस्तेषां न तथा लोकोत्तरत्वं यथा राज्ञां ! राजानश्च रजोगुणप्रधानाः नानाविधमोहकार्यैश्वर्यसंपन्नाः प्रायो दुर्वृत्ता एव समुपलभ्यन्ते. एवंसत्यपि सकलैश्वर्यशाली मोहलवहीनः शिवराजः स्वकर्तव्यं तथा नीतिं च न व्यस्मरत्. इदमेव तस्यालौकिकत्वं. प्रसिद्धो महंमदगिझनवीनामा यवनराजः सप्तदशकृत्व इमां भारतमहीं निर्लुण्ठ्यागणितान् जनान् हत्वा संपादयामास संपद्राशिं, परन्तु तस्य च वियोगसमये सम्प्राप्ते स वालक इव रुरोद. तुकारामसाधुवरा अ[illegible] [illegible]र्वदैव सुखेन वर्तमाना आनन्देन दिवं जग्मुः

शिवराजः साधुवल्लीलया प्राणान् व्यसृजदिति महदाश्चर्यं. अतएव शिवराजो जनक इव राजर्षिरभूदिति मान्या वदन्ति.

( ३ )

बान्धवाः ! यद्यपि समाप्तकल्पमेव शिवराजचरितं तथापि गुणदोषविवेचनं विना तत्पूर्तिर्न संभाव्यत इति संक्षेपतस्तद्वर्णयित्वोपसंहारामि. यद्यपि गुणविवेचनं प्रथमं कर्तुमुचितं तथापि तद्दोषविवेचनेन समुज्वलितं भवतीति प्रथमतो दोषान्विवेचयामि. सज्जनाः ! पूर्वोक्तरीत्या सकलगुणास्पदे नीतिमति तस्मिन् प्रौढा दोषा नासन्नेव परन्तु तस्मिन् यवनेतिहासकारैर्ये समुत्प्रेक्षिता दोषास्तानेव विचारयामि.

यवनेतिहासकारैः शिवराजे प्राधान्येन कृतघ्नता, कापट्यं, क्रौर्यं लुब्धत्वं लुण्ठकत्वादयो दोषा उत्प्रेक्षिताः. क्रमेण विजापुरराजद्रोहः, अफझुलखानवधो, बाजीघोरपडेसामन्तस्य नाशः, सुरतनागरिकच्छलं, इत्युदाहरणान्यपि दत्तानि. एतेषामसत्यत्वं चतुरो वाचकवर्गो लीलयैव जानीयात्. ये तु मूढमतयस्तेषां कृते वयं किंचिल्लिखामः. शिवराजः कृतघ्नस्तर्हि अवरंगजेबः कः ? शिवराजश्च मातृभूमिं परकीयदास्यादमोचयत. अवरंगजेबस्तु बन्धूंस्तथा पितरमेव जघान. वस्तुतस्तु मातृभूम्युद्धारः पवित्रं कर्म न कृतघ्नता. अफझुलखानश्च स्वयं कपटी

स्वकपटस्य फलमेव तु लेभे. घोरपडेसामन्तस्य वधस्तु शिवराजस्य निरतिशयां पितृभक्तिं बोधयति. ये च परकीयकृपासंपादनार्थं स्वीयेभ्य एव द्रुह्यन्ति तेऽवश्यमेव दण्डनीया भवन्ति. लुब्धत्वं लुण्ठकत्वं चावशिष्टम्. परन्तु यदि शिवराजो यवनराजप्रदेशं निर्लुण्ठ्येतरयवनराजवद्विलासपरोऽभविष्यत्तदा स लुब्धो लुण्ठकश्चाकथयिष्यत्. नैव कदापि शिवराजः स्वसुखार्थं संपादितात् द्रव्यात् कपर्दिकामपि समुपयुयोज. प्रत्युत शिवराजः संपादितस्य द्रव्यस्य सदुपयोगार्थं कियान् सावधान आसीदित्यत्राहमेकां कथां कथयामि.

एकदा युवराजः संभाजिराजो मृगयार्थं सुहृद्भिः प्रार्थितोऽश्वान् क्रेतुं द्रव्यमपैक्षत. शिवराजश्च परं निस्पृहस्तदीयामपेक्षां नापूरयत्. ततश्च स कुमित्रैश्चोदितः कोषागारस्य द्वारमीषदुद्घाट्य तत एव द्रव्यं जहार. इदं निरीक्षकमुखाद्विज्ञाय क्रुद्धः शिवराजस्तमाहूय कशाभिः परमताडयत्. अवदच्च—पुत्रक? इदं च द्रव्यं यथेच्छव्ययार्थं न मातृभूम्या मह्यं प्रदत्तं. मातृभूमिरनेन द्रव्येण दीनान् जनान् रक्षितुमिच्छति, बलोन्मत्तान् यवनानुन्मूलयितुं. तस्माद्यथा चौरस्य द्रव्यापहारे कशाभिस्ताडनं न्यायविहितं तथैव त्वामहं ताडयामीति.

वाचकाः? उपरिनिवेदितयाऽनया कथया शिवराजः कथं निस्पृह आसीदिति निवेदितमेव. एवंसत्यपि यदि तस्य लुब्धत्वं तदा केवलं संपल्लाभार्थमेव जनान् पीडयतां महंमदगिझनवीइत्यादीनां

कीदृशं तत्वमिति भवद्भिरेव वक्तव्यं. तस्माच्छिवराजदोषोद्घाटनं यवनेतिहासकाराणां पक्षपातमूलकमेवेति न तत्रादरः सतां.

बान्धवाः! निरस्ता दोषाभासाः. अधुना गुणा वर्ण्यन्ते. ते चानुकरणार्थमभीष्टाः. तत्र मुख्यो गुणः शिवराजे दीनदयालुताऽऽसीत्. स च स्वकीयान् मदोन्मत्तैर्यवनैःपीडितान् यथा ऽरक्षत् तथैव परकीयानपि स्वकीयैः पीडितान्. स्वीयं कृत्स्नमप्यायुर्दीनरक्षार्थं यापयता शिवराजेन निःसंशयमयं गुणः प्रकटीकृतः.

द्वितीयश्च गुणः—परधर्माद्वेषित्वं. यथा यवनराजाः स्वप्रजाभूतानपि अयवनजनानद्विषन्. तदर्थं च तान् करेणादण्डयंस्तथा न शिवराजः स्वप्रजाभूतान् यवनान्. किंबहुना स यथाऽऽर्याणां मूर्तीरादरयत्तासां च रक्षणे प्रायतत, तथैव यवनानामुपासनामंदिराणि रक्षितुं.

तृतीयश्च—सर्वथा परांगनासंसर्गपरांमुखता. अयं चालौकिको गुणः साधारणेष्वपि जनेषु न दृश्यते तदाऽपारैश्वर्यशालिषु राजसु नेति किमु वक्तव्यं. वाचकाः! रामचन्द्रसदृशाः दुष्यन्तसमवृत्तयो नरवराः कलियुगेऽत्यन्तं विरलाः. तत एव शिवराजं तदीयाः शत्रवोऽपि स्तुवन्ति.

चतुर्थश्च—मातृभक्तिः. स स्वमातरं जिजादेवीं भगवतीं मन्यमानस्तदुपदेशमनुसृत्य वर्तनेनेयन्तं भाग्योत्कर्षं लेभे.

पंचमश्च गुणो–गुणग्राहकता. अतएव तदीयाः सेवका अहमहमिकया दुष्कराण्यपि कार्याणि कर्तुं प्राभवन्. एकदा प्रसिद्धस्तानाजिमालुसरेनामा बालसुहृद्वीरः स्वपुत्रस्य विवाहोत्सवे निमंत्रितुं शिवराजं समागतो जिजादेव्या सिंहगडदुर्गाक्रमणाय कथितस्तत एव निर्गत्य रात्रौ दुर्गमात्मवशं विधाय वीरलोकं ययौ. शिवराजश्च तद्दुःखदुःखितस्तस्य बन्धुं सूर्याजिं तत्पदे नियोज्य स्वयं तस्य स्वामिभक्तस्य तानाजिरावस्य पुत्रस्य विवाहं कृत्वा सर्वानप्यानन्दयत्.

षष्ठश्च–निराभिमानित्वं. बहवो हि जनाः प्रथमतः साधारणा महता परिश्रमेणैश्वर्यं संपाद्य तन्मोहमूढचेतसः कर्तव्यपराङ्मुखा अपारगर्वभारभुग्ना भवन्ति. शिवराजश्च जन्मतः साधारण एवासीत्. तथापि परमैश्वर्यं प्राप्य स लेशतोऽपि गर्वं नोवाह. स सदैवात्मानं मातृभूमेः सेवकं मन्वानस्तदुद्धारकर्माण्येव चक्रे

सप्तमश्च–कृतज्ञता. शिवराजः परं कृतज्ञ आसीत्. स च केनाऽपि कृतं स्वल्पमपि उपकारं न व्यस्मरत्. ततएव सर्वे सेवकास्तस्मा अस्पृहयन्. वाचकाः ! अस्मिन् विषयेऽहमेकां कथां कथयामि.

एकदा शिवराजः सुरतनामकं धनाढ्यं यवनराज्यान्तर्गतं नगरमाक्रमितुमिच्छुः प्रथमतः स्वयं तन्निरीक्षितुमियेष. ततश्च गृहीतभिक्षुवेषः शिवराजः कृतकृत्यः क्रमेण स्वराजधानीं प्रत्यागच्छन् मार्गे

झंझावातपीडितो निवासार्थं कस्याऽपि कृपीवलस्य गृहं प्रविवेश. तत्र च तेन सादरं सेवितः परं संतुष्टः स्वराज्यं प्राप्य तं कृपीवलं समाहूय महता प्रेम्णा समनुगृह्य स्वराज्यवासिनं चक्रे. वाचकाः! किमिदमुदाहरणं शिवराजस्याकृत्रिमां कृतज्ञतां न प्रदर्शयति.

अष्टमश्च गुणः—आस्तिक्यं. बान्धवाः!. यद्यपि मया शिवराजस्य गुणाः प्रदर्शितास्तथापि अयं गुणस्तस्मिन्नपूर्व एवासीत्. प्राप्तैश्वर्योऽपि शिवराज आत्मानमीश्वरसेवकमेवामंस्त. विश्वसिति स्म च परमात्मसाहाय्ये. परमबलाढ्येन अफझुलखाननाम्ना कपटिना विजापुराधीशसेनापतिना मीलितुमेकाकी प्रयातः शिवराजो मनसि भगवतीमेव स्वसाहाय्यायित्रीं निरचिनोत्. ततएव स महान्ति कार्याणि व्यधात्. सर्वनाशकारणं दुरभिमानं लेशतोऽपि नोवाह.

प्रियबांधवाः! यद्यपि श्रीमति सकललोकमाननीये मातृभूमिसेवादक्षे श्रीशिवराजेऽगणिताः सद्गुणा आसंस्तथापि केवलं मया जडमतिना दुर्जनयवनेतिहासकारमुखमुद्रणार्थं समुल्लिखिता उपरिनिरूपिता अष्टौ गुणाः वस्तुतोऽविरतं स्वकिरणव्रातेनामृतं वर्षतो राकानिशाकरस्य नास्ति गुणवर्णने यथाऽवश्यकता तथा शिवराजस्याऽपि. ये हि तत्राऽपि दोषान पश्यन्ति मन्ये तान् जात्यन्धानिव ब्रह्माऽपि संतोषयितुं न शक्नुयात्.

सज्जनाः ? महाभागाः ? कः खलु शिवराजस्य गुणनिधिं वर्णयितुं शक्नुयात्. येन हि स्वीयं सकलं जन्म नानाक्लेशान्विषह्य स्वमातृभूम्युद्धारार्थं यापितं स महात्मा गोब्राम्हणप्रतिपालकराजाधिराजमहाराजः केन वर्णयितुं शक्यः ! प्रियमहाभागाः ? अस्माकमुपरि ये खलु शिवराजेनोपकारराशयः कृतास्तेषां स्मरणार्थं खलु मया परमपवित्रं शौर्यादिसद्गुणादर्शं चरित्रमिदं लिखितं. वयं च सर्वे भारतवासिनोऽशतोऽपि यदि शिवराजस्य राजर्षेः सद्गुणानादर्शीकृत्य वर्तिष्यामहे तदैव कृतज्ञा भविष्यामः. स च त्रैलोक्यपालकोऽस्मान् कृतज्ञान् करोतु.

भारतवीररत्नमालायाः प्रथमे रत्ने.

# श्रीमहाराणाप्रतापसिंहचरिते.

## मान्यानामभिप्रायाः.

त्रभवान् कविसम्राट् टागोरकुलेन्दू रवीन्द्रनाथः—

प्रायः संस्कृते गद्यकाव्यानि न सन्त्येव. यानि च सन्ति तानि समासप्रचुराणि दुर्बोधवाक्यव्याप्तानि बालानामनुपकारीणि. इदं नूतनं हसूरकरोपाव्हश्रीपादशास्त्रिणा लिखितं 'श्रीमहाराणाप्रतापसिंहचरितम्' तु पूर्वोक्तदोषवर्जितं विशेषतो मातृभूसेवनाय सन्नद्धानां विद्यार्थिनामुपयोगि. अतएव मया अस्य पाठनाय मदीये शान्तिनिकेतननाम्नि विद्यालये समाज्ञप्ताः शिक्षकाः. इच्छामि च पुनरपि एतादृशानि नूतनानि संस्कृतपुस्तकानि प्रादुर्भवन्तु इति.

सुप्रसिद्धस्य केसरीपत्रस्य संपादकः—

अश्लीलपदविन्यासानामनीतिप्रवर्धकानां दशकुमारचरितादीनां चरितानां पाठनापेक्षया यदि एतादृशानि चरितानि तत्र तत्र नियुक्तानि भवेयुस्तदा महान् लाभः स्यात्.

सितामहुनरेशः—

इदं चरितमवलोक्य महान् प्रमोदः. उपकृताः सर्वे राजस्थानवासिनः. संस्कृतभाषाया इयमलौकिकी सेवेति मन्ये.

भारतसाधुरत्नमालायाः प्रथमं रत्नम्.

# श्रीमद्वल्लभाचार्यचरितम्.

लेखकः

हसूरकरोपाव्हः श्रीपादशास्त्री

[ र्थः, वेदान्ततीर्थः, मीमांसातीर्थः, सांख्यसागरश्च. ]

अस्मिन् चरिते श्रीवल्लभाचार्याणां समग्रं चरितं, पुष्टिमार्ग-
स्वरूपं, तदीयानि तत्वानि, तत्वज्ञानं, शंकराचार्यादीनां मतापेक्षयाऽ-
यैव मतस्यादरणीयत्वे प्रमाणानि सम्यक् निरूपितानि. श्रीमद्वल्लभा-
चार्याणां चरितमन्यदेतादृशं नैव विद्यते. मूल्यम्. २ रूप्यकद्वयम्.
प्रेषणव्ययः पृथक्.

द्वितीयं रत्नम्–

# श्रीरामदासस्वामिचरितम्.

अचिरादेव प्रकटीभविष्यति

मॅनेजर बी. बी. गंधे.

३० इमलीबाजार, इंदोर, सिटी C